दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९६ तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष २५ अंक नं० १२

अध्यात्म-पद

(राग-सोरठ)

अंतर उज्जल करना रे भाई! ॥टेक॥

कपट कृपान तजै नहिं तबलौं, करनी काज न सरना रे॥अंतर०॥

जप तप तीरथ यज्ञ व्रतादिक आगम अर्थ उचरना रे।
विषय कषाय कीच नहिं धोयो, यों ही पचि पचि मरना रे॥अंतर०॥

बाहिर भेष क्रिया उर शुचिसों कीये पार उतरना रे।
नाहीं है सब लोक रंजना, ऐसे वेदन वरना रे॥अंतर०॥

कामादिक मनसौं मन मैला भजन किये क्या तिरना रे।
'भूधर' नील वसन पर कैसैं, केसर रंग उछरना रे॥अंतर०॥

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

मई १९७० वार्षिक मूल्य ३) रुपये (३००) एक अंक २५ पैसा [चैत्र : २४९६

भगवान महावीर

[सम्पादकीय]

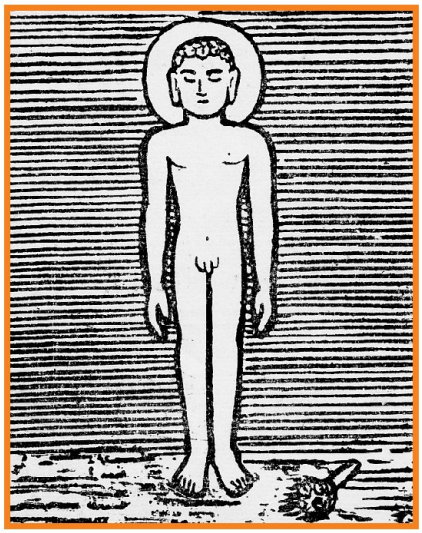

हम सब महावीर की संतान! महावीर के उत्तराधिकारी! कितने महान गौरव की बात है! उन प्रभु को मोक्ष पधारे २४९६ वर्ष बीत चुके और चार वर्ष बाद ढाई हजान वर्ष पूरे होंगे... तथापि आज भी भगवान महावीर अपने उपदेश द्वारा मानों हमारे समक्ष विद्यमान हों—ऐसा उनका शासन वर्त रहा है। अहा, हमने वीतरागी वीर प्रभु के शासन में जन्म लिया... हम भगवान के मार्ग पर चलनेवाले रत्नत्रयधारी संतों के पादविहारी बने, उनके अनुयायी बने, उनकी शिष्य परंपरा में सम्मिलित हुए।

वीतरागी भगवान जैसे महान हैं, उनका शिष्य होनेवाले की जिम्मेवारी भी उतनी ही महान है। वीतराग का शिष्य राग का आदर कैसे कर सकता है? राग से पार होकर आत्मा में चैतन्यभाव प्रगट करना वह अपूर्व वीरता है और वही वीर का मार्ग है। भगवान महावीर के ऐसे मार्ग की उपासना करने की रीति पूज्य श्री कानजीस्वामी हमें सिखला रहे हैं। उस मार्ग को उपासना द्वारा ही भगवान की सच्ची पहिचान होती है।

भगवान महावीर के हम सब अनुयायी इस ध्येय को लक्ष्य में रखें और ध्येय की सिद्धि में परस्पर सहयोग मिले ऐसा वातावरण पैदा करें। सब झंझटों को छोड़कर, छोटे से छोटे झगड़े को भी एक ओर रखकर वीतराग मार्ग का प्रचार करें और उसी की उपासना में आत्मा की सर्व शक्ति लगाकर जैन शासन को उज्जवल बनायें। यही भगवान महावीर का सच्चा जन्मोत्सव है, क्योंकि भगवान ने अपने जीवन में ऐसा किया था... आज भगवान महावीर का जन्मोत्सव मनाते हुए उन पवित्रात्मा की वीतरागी वीरता का स्मरण करके दृढ़ संकल्प करें कि हम कायर नहीं बनेंगे परंतु वीर की संतान को शोभा दे ऐसी वीतरागी वीरता के उद्यम पूर्वक आत्मा की साधना करेंगे... वीर प्रभु के मार्ग पर चलेंगे और सादि अनंत सिद्धालय में उनके साथ रहेंगे।

'जय महावीर!'

—ब्र०हरिलाल जैन

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१) श्री ब्र० गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

मई : १९७० ☆ चैत्र, वीर नि०सं० २४९६, वर्ष २५ वाँ ☆ अंक : १२

निजस्वभाव को जाने तो

आत्म-सुख का अनुभव हो

आत्मा का ज्ञानस्वभाव स्वयं सुख से भरपूर है, उसकी जिसे खबर नहीं है और बाह्य साधनों द्वारा सुख लेना चाहता है—अपने सुख के लिये बाह्य साधन माँगता है वह वास्तव में भिक्षुक है। अपने में अनंत सुखनिधि भरी है, उसका तो उपयोग नहीं करता और दूसरे मुझे सुख दें, पैसा हो तो मुझे सुख मिले, स्त्री-पुत्र-मकान आदि हों तो मैं सुखी होऊँ—ऐसा माननेवाला जीव दीन-पराधीन है। जिन्हें निज-निधान की प्रतीति है ऐसे ज्ञान तो कहते हैं कि—जगत के किसी पदार्थ का अंश भी हमें नहीं चाहिये.... हमारा सुख तो हमारे आत्मा में भरा है।—इसप्रकार वे जगत से उदास और अपने आत्मा के दास हैं। पर से भिन्न ऐसे निजस्वभाव को जाने बिना जगत के प्रति सच्ची उदासीनता और आत्मा में सच्ची लीनता एवं आत्म-सुख का अनुभव नहीं होता।

अंतरिक्ष पार्श्वनाथ (शिरपुर) क्षेत्र में
पंचकल्याणक-महोत्सव के अवसर पर

निरालम्बी आत्मभगवान का वर्णन

[शिरपुर-महाराष्ट्र (अंतरिक्ष पार्श्वनाथ) पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रसंग पर पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों में से:—समयसार गाथा ७२-७४ तथा संवर अधिकार के प्रारंभ की गाथाओं के ऊपर प्रवचन हुए, उनका सारांश]

[फाल्गुन कृष्णा ९ से फाल्गुन सुदी २]

आत्मा ज्ञानानंदस्वरूप है; देह से, कर्म से, राग से भिन्न ऐसा जो शुद्ध आत्मा, वह समयसार है। प्रत्येक आत्मा का ऐसा स्वभाव है। अपने उस स्वभाव को भूलकर जीव अज्ञानभाव से संसार में भ्रमण करता है, दु:खी होता है।

जीव का यह दु:ख तथा संसार किसप्रकार मिटे ? ऐसा पूछनेवाले जिज्ञासु जीव को आचार्यदेव समझाते हैं कि ज्ञानमात्रभाव से ही बंधन अटकता है। आत्मा का ज्ञानस्वभाव तथा रागादि परभाव—इन दोनों का अत्यंत भेदज्ञानरूप जो ज्ञान है, वह रागादि रहित है; इसलिये उस ज्ञान के द्वारा ही संसार का निरोध हो सकता है; इस बात को समयसार की ७२वीं गाथा में समझाते हैं—

अशुचिपना, विपरीतता ये आस्रवों की जानके,
उन्हें दु:खकारण जानके, उनसे निवर्तन जीव करे॥७२॥

जिसप्रकार मलिन काई से स्वच्छ पानी भिन्न है; उसीप्रकार मलिन आस्रव, यह तो दु:खरूप हैं तथा चैतन्यभाव से विपरीत हैं; इनसे भिन्न चैतन्यस्वरूप स्वयं आनंदस्वरूप है—इसप्रकार नित्य जाननेवाला जीव ज्ञान में तन्मय होकर अज्ञानरूप संसार से पृथक् हो जाता है।

जीव ने अनंत काल में बाहर का अन्य ज्ञान बहुत किया किंतु स्वयं अपने आत्मा को नहीं पहचाना; ज्ञानस्वरूपी स्वयं को स्वयं ने नहीं पहचाना। शुद्ध आत्मा की बात जब श्रवण करने को मिली, तब अंतर के प्रेम से उसका भी श्रवण नहीं किया; आत्मा के ज्ञान से रहित सभी

जानपना या शास्त्र का अध्ययन, यह सभी व्यर्थ है, अज्ञान है। इस अज्ञान को दूर करने की रीति क्या ? कि चैतन्यस्वभाव को समस्त परभावों से भिन्न जानना, यही अज्ञान दूर करने का प्रयास है। शेष अन्य किसी भी उपाय से या राग से अज्ञान दूर नहीं हो सकता।

उमराला गाँव का भावसार, नाम उसका सुंदरजी, पिता रूपचंद, उसका कार्य देखो तो नाक का मैल (गुंगा) निकालकर मुँह में चबाता रहता था! इसीप्रकार यह आत्मा सारभूत भावों से भरी हुई सुंदर चैतन्यस्वरूप वस्तु है, किंतु स्वयं अपने को भूलकर इसकी ऐसी कुटेव पड़ गई है कि राग-द्वेष मलिन भावों को ही भला जानकर, निजरूप मानकर अनुभव करता है तथा इनमें सुख मानता है। भाई! तू तो उत्तम चैतन्यस्वभाववाला, आनंद से भरा हुआ, सुंदर रूप, इसका तू वेदन कर; इस परभावरूप मलिनता का वेदन तुझको शोभा नहीं देता। तेरा वेदन तो आनंदरूप होता है।

भगवान! एकबार प्रेम से श्रवण तो कर! तुझे तेरे आनंद की प्राप्ति किसप्रकार हो, इसकी बात संत तुझे सुनाते हैं। तेरी वस्तु तेरे में है, तेरे चैतन्यभाव में तेरा आत्मा है, उसको बाहर या पुण्य-पाप में खोजेगा तो वह नहीं मिलेगा। ज्ञान तथा राग दोनों का भिन्न स्वरूप है, उसकी पहिचान हो जाने से आत्मा राग से पृथक् हो जाता है अर्थात् ज्ञान में एकतारूप तथा राग से भिन्नतारूप परिणमन हो जाता है। इसप्रकार भेदज्ञान के द्वारा ही आत्मा आस्रवों से छूटकर मुक्ति प्राप्त करता है।

आत्मा के ज्ञान से रहित चारों गति के अनंत अवतार जीव ने धारण किये। स्वर्ग के भी अनंत अवतार धारण कर चुका। शुभभाव करके अनंतबार स्वर्ग में जाने पर भी किंचित् मात्र भी सुख प्राप्त नहीं कर सका, अर्थात् दुःख ही प्राप्त किया। शुभराग, यह भी दुःख है, आस्रव है, अपवित्र है, इससे भिन्न आत्मा का सहज चैतन्यस्वभाव ही सुखरूप है, अनाकुल है, पवित्र है। ऐसे आत्मा को पहिचाने, तब ही संसार दुःख से छूटकर मोक्षसुख का मार्ग प्राप्त होगा।

प्रभु! तेरा यह असंख्यात प्रदेशी आत्मा अनंत गुणों की संपत्ति का शाश्वत् धाम है। पुण्य-पाप या बाहर के संयोग, यह कहीं तेरी संपत्ति नहीं है। तेरी संपत्ति तो तेरे आत्मा में ज्ञान-आनंद से परिपूर्ण है; इसका भान (ज्ञान) करने से भवों का अंत आता है। वीतरागी संत कहते हैं कि भव के अंत की बात! अहा! आत्मा तो अतीन्द्रिय आनंद का झरना है।

सम्यग्दर्शन किसप्रकार हो ?—कि चिदानंद प्रभु आत्मा के अंदर दृष्टि जाते ही

सम्यग्दर्शन होता है। पुण्य-पाप के भावों का अनुभव आकुलतारूप-मलिनरूप है, इसमें सम्यग्दर्शन नहीं है तथा भवों का अंत भी इनसे आनेवाला नहीं।

भगवान आत्मा पर के अवलंबन से रहित निरालंबी है। अंतरिक्ष अर्थात् आकाश में विराजमान निरालंबी आत्मा। यहाँ भगवान पार्श्वनाथ को अंतरिक्ष कहने में आता है; तीर्थंकर भगवान समवसरण में सिंहासन के ऊपर चार अंगुल ऊँचे विराजमान हैं, सिंहासन का अवलंबन उनको नहीं। जिसप्रकार आत्मा का स्वभाव राग के अवलंबन से रहित है, उसीप्रकार सर्वज्ञपद प्रगट होने के बाद शरीर भी निरालंबी अर्थात् अंतरिक्ष हो जाता है। राग के अवलंबन से लाभ माननेवाला, वह निरालंबी भगवान को पहिचानता नहीं है। अहा! चैतन्य का सहज स्वभाव, उसमें गुण-गुणीभेद के विकल्प का भी अवलंबन नहीं है। राग तथा आत्मा की भिन्नता पहिचानकर चैतन्यस्वरूप को अनुभव में लेना, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है।

मोक्ष का मार्ग रत्नत्रय है; उसमें भी सम्यग्दर्शन प्रथम-मूल है। सम्यग्दर्शन के लिये प्रथम उद्यम करना चाहिये। सम्यग्दर्शन होने का उपाय बतलाते हुए प्रवचनसार में आचार्य भगवान कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं कि—अरिहंतदेव के शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने से इस आत्मा का शुद्धस्वरूप पहिचाना जा सकता है, क्योंकि परमार्थ से इस आत्मा का स्वरूप भी अरिहंत जैसा ही है। इसप्रकार शुद्ध आत्मा को पहिचानने से सम्यक्त्व होता है तथा मोह का नाश होता है।

आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय का यथार्थ ज्ञान करके, पश्चात् चेतनपर्याय तथा गुण को ध्रुव द्रव्य में अंतर्मग्न करके शुद्ध वस्तु का अभेद अनुभव करने से मोह का नाश होकर सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। पर्याय को द्रव्य के साथ अभेद करने से बीच में मोह रह सकता नहीं। जिसप्रकार शरीर के अंगरूप अंगुली के द्वारा संपूर्ण शरीर का स्पर्श किया जा सकता है, उसीप्रकार आत्मा के अंगरूप जो ज्ञानपर्याय पूर्णज्ञान का अंश है, उसके द्वारा संपूर्ण आतमा का ज्ञान होता है। शरीर, यह कहीं आत्मा का अंग नहीं है, राग-द्वेष भी आत्मा के वास्तविक अंग नहीं हैं, ज्ञानादि अनंत गुण तथा उनकी पर्यायें वह आत्मा के अंग हैं। उस अवस्था को अंतर में ध्रुव के साथ लगाने से आनंदकंद आत्मा का ज्ञान होता है। इसप्रकार शुद्धतारूप परिणमन किया, तब शुद्ध आत्मा की उपासना हुई अर्थात् मोक्षमार्ग प्रारंभ हुआ। इसप्रकार अपने द्रव्य-गुण-पर्याय के ज्ञान द्वारा मोक्षमार्ग का प्रारंभ होता है।●

आचार्य भगवान अनुग्रहपूर्वक

आत्मा के आनंद की भेंट देते हैं

अहो, आनंदमय निजपद को साधने का उपाय आचार्यदेव ने इस समयसार में बताकर जगत के ऊपर महान उपकार किया है। वे कहते हैं कि—हमारे गुरुओं ने प्रसन्न होकर हमें शुद्धात्मा बतलाया है, इसको हमने अनुभव में लेकर शुद्धात्मा प्रगट किया है; इसी शुद्धात्मा को अब मैं तुमको दिखलाता हूँ, और तुम भी अपने स्वानुभव से इसको प्रगट करना।

आत्मा का पर से विभक्त, स्वभाव से एकत्व ऐसा शुद्धस्वरूप बतलाते हुए आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि अपने आत्मा के स्वानुभवपूर्वक अत्यंत आनंदरूप जो निजवैभव मुझे प्रगट हुआ है, उस निजवैभव से मैं शुद्धात्मा बतलाता हूँ।

आत्मवैभव के प्रगट होने में निमित्त कौन ? कि जो राग-द्वेष का नाश करके सर्वज्ञ हुए हैं, ऐसे अरिहंतदेव की वाणी निजवैभव को दिखलानेवाली है, इसकी उपासना से निजवैभव प्रगट होता है। उपासना अर्थात् उसमें जैसा स्वभाव बतलाया वैसे स्वभाव को स्वयं लक्ष्य में लेकर प्रगट किया—इसका नाम जिनवाणी की उपासना है।

पूर्ण आत्मवैभव को प्राप्त कर लिया, ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा, वैसे ही अनुभवी उनके प्रतिनिधि ज्ञानी संत, उनकी ही वाणी आत्मा के अनुभव में निमित्तरूप होती है। अज्ञानियों के द्वारा वर्णित कुशास्त्र आत्मा के अनुभव में निमित्त नहीं हो सकते; अर्थात् सत्य वाणी क्या ? विपरीत वाणी कौनसी ? इसका निर्णय करना चाहिये। वीतराग की वाणी राग से लाभ प्राप्त होने को कहती नहीं। राग को दूर करके जो वीतराग हुए, वह राग करने का उपदेश किसप्रकार दे सकते हैं ? राग के पोषण का उपदेश प्रदान करे, वह वीतराग की वाणी नहीं।

सर्वज्ञस्वभाव के वैभव से परिपूर्ण आत्मा है; इस स्वभाव को सिद्ध करनेवाली युक्ति, यही सच्ची युक्ति है। राग से धर्म मानने को कहे, जड़-चेतन को एक माने-मनावे, वह तो छिलके जैसी कुयुक्ति है; ऐसी मिथ्या कुयुक्तियों का खंडन करने में जो समर्थ है, ऐसी निस्तुष,

निर्दोष, निर्बाध युक्ति के द्वारा आत्मा का वैभव प्रगट हुआ है।

सर्वज्ञ की परंपरा से हमार गुरु तक समस्त गुरुओं ने प्रसादरूप हमको शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया है; हमारे ऊपर अनुग्रह करके, कृपा करके, प्रसन्न होकर हमको शुद्धात्मा का उपदेश दिया; अर्थात् पात्र के रूप में हमको शुद्धात्मा की प्राप्ति थी एवं हमारे गुरुओं ने भी हमको वही समझाया, इसप्रकार उपादान-निमित्त की अपूर्व संधि है।

धर्म का उपदेश देनेवाले आचार्य कैसे होते हैं? कि जो स्वयं शुद्धात्मा का अनुभव करनेवाले हैं, और उस शुद्धात्मा का ही उपदेश दें। शुभराग करते-करते मोक्ष हो जाएगा—ऐसा माने-मनाये, वह सच्चा उपदेशक नहीं। वीतरागी पवित्रता तथा आनंद किसप्रकार प्रगट हो? कि शुद्धात्मा के सन्मुख होने से ही प्रगट होता है।—इसप्रकार शुद्धात्मा का उपदेश प्रदान करे, वही सच्चा उपदेशक है।

हमारे गुरु कैसे थे? भले ही छद्मस्थ थे, सर्वज्ञ नहीं थे, किंतु वह विज्ञानघन आत्मा में अंतर्निमग्न थे। हमारे महाभाग्य से हमको ऐसे गुरु मिले, हमने उनको पहिचाना, तथा हमारे ऊपर अनुग्रह करके हमको उन्होंने शुद्धात्मा का उपदेश दिया; उसका झेलकर अपने आत्मा के स्व-संवेदनरूप महान आनंद हमको प्रगट हुआ।—ऐसा हमारा निजवैभव है।

हमारे गुरु कैसे थे? आत्मा के विज्ञानघनस्वरूप में मग्न थे।—इसप्रकार गुरु की पहिचान की है।

गुरु ने किसका उपदेश दिया?—कि शुद्धात्मा का उपदेश दिया।

उसको झेलकर हमने क्या किया? कि निरंतर झरनेवाला जो सुंदर आनंद है, उस आनंद के प्रचुर स्व-संवेदन के द्वारा हमने अपना निजवैभव प्रगट किया है।

आत्मा में ऐसा निजवैभव प्रगट करके हम उस निजवैभव से शुद्धात्मा का स्वरूप समयसार में बतलायेंगे, उसको तुम भी स्वानुभव से प्रमाण करना। देखो, कैसी अपूर्व संधि है!

हमारे गुरुओं ने हमको शुद्धात्मा बतलाया है, उसको हमने अनुभव में लेकर निजवैभव प्रगट किया है; उसी शुद्धात्मा को मैं तुमको दिखलाता हूँ, तथा तुम भी तुम्हारे अनुभव से उसको प्रगट करना।

'समयसार' का प्रारंभ भी कैसी अपूर्वता से किया है! अनंत सिद्ध भगवंतों को आत्मा में स्थापित करके मंगलाचरण किया है। जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा ही मैं हूँ—इसप्रकार सिद्ध

भगवान को आत्मा में स्थापित करके उनको वंदन किया है। मैं सिद्ध तथा तू भी सिद्ध—इसप्रकार श्रोता को भी सम्मिलित करके समयसार सुनाते हैं, तू भी आत्मा में सिद्धपना स्थापित करके, स्वीकार करके उल्लासपूर्वक श्रवण करना।

परघर में अनंत काल व्यतीत हो गया, किंतु स्वघर में आने के लिये उत्साह होता है; संसार भ्रमण करने में भले ही अनंत काल व्यतीत हुआ, किंतु साधक होकर मोक्ष की साधना करने में कहीं अनंत काल नहीं लगेगा; असंख्य समय से अधिक साधकपने में लगेगा नहीं। जिसप्रकार प्रातःकाल बैल जब घर से निकलकर खेत में काम करने जाता है, तब उसकी चाल में वेग नहीं होता, धीरे-धीरे जाता है; किंतु शाम को जब सारे दिन काम करके घर आता है, तब उत्साह से दौड़ता हुआ आता है कि अब निश्चिंतता से घर में रहूँगा तथा चारा चरूँगा—ऐसा उसका उत्साह है। इसीप्रकार अज्ञान से संसार में अनंत काल तक भ्रमण करके थका हुआ जीव जब अंतर में स्वघर में आता है, तब उत्साह से उसकी परिणति स्वरूप की तरफ दौड़ती है, तथा असंख्य समय के अंदर संसार का छेद करके परम आनंदरूप सिद्धपद को साध लेता है।

अहो, ऐसा आनंदमय निजपद को साधने का उपाय आचार्यदेव ने इस समयसार में बतलाकर जगत के ऊपर महान उपकार किया है; जगत को आत्मा के आनंद की भेंट दी है। जैसा पूर्णानंद का स्वाद सर्वज्ञ परमात्मा ने लिया, वैसा ही आनंद का स्वाद आत्मा में प्रगट होता है, भले ही पूरा नहीं किंतु अंशतः, फिर भी आनंद की जाति तो वही है—ऐसा आनंद आत्मा में प्रगट हो, तब धर्म हुआ कहा जाता है। आत्मा के वैभवरूप धर्म, उसमें आनंद की छाप है। धर्म हो और आत्मा का आनंद न प्रगटे, ऐसा नहीं हो सकता। चैतन्य-सरोवर में डुबकी लगाते ही अतीन्द्रिय आनंद प्रगट होता है। चैतन्य-सरोवर का हंस आनंदरूपी मोती का चारा चरता है। हे जीव! हम आनंद के अनुभवपूर्वक जो शुद्धात्मा दिखलाते हैं, उस शुद्धात्मा को तू प्रमाण करना, विकल्प से नहीं किंतु अंतर के स्वानुभव से प्रमाण करना, ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने अनुग्रहपूर्वक जगत को आत्मा के आनंद की भेंट प्रदान की है।

(जामनगर-प्रवचन, समयसार, गाथा ५, माघ सुदी ५)

ज्ञानी की अद्‌भुत ज्ञानचेतना

ज्ञानी की, ज्ञानचेतना अत्यंत सूक्ष्म है अर्थात् अतीन्द्रिय है; शुभराग वह तो स्थूल है, उस स्थूल भाव के द्वारा अंदर के सूक्ष्मभाव ग्रहण नहीं किये जा सकते। राग से भिन्न रहे हुए ऐसे सूक्ष्म ज्ञान के द्वारा ही ज्ञानी की अद्‌भुत दशा की पहिचान की जा सकती है।

राग की क्रियाओं के समय उनसे भिन्न परिणमन करनेवाली ज्ञानी की जो ज्ञानचेतना है, उस ज्ञानचेतना को अज्ञानीजन पहिचान नहीं सकते, अर्थात् ज्ञानी के वास्तविक कार्य की उन्हें पहिचान नहीं, उन्हें तो राग ही दिखलाई देता है। राग से पार भावों की उनको खबर नहीं। स्वयं राग में तन्मय होकर राग को करता है, इसलिये 'ज्ञानी भी राग को करते हैं'—ऐसा उनको प्रतिभासित होता है; किंतु ज्ञानी तो ज्ञानमय भाव में ही तन्मय तथा राग से भिन्न वर्तते हैं—ऐसी अद्‌भुत ज्ञानपरिणति अज्ञानी को दिखलाई नहीं देती।

ज्ञानी के रागातीत चैतन्यभाव को सूक्ष्म कहा है, तथा रागादि भाव को स्थूल कहा है। अज्ञानी इन सूक्ष्म भावों का अनुभव नहीं करता, तथा रागादिक स्थूलभावों का ही अनुभव करता हुआ, उसको धर्म मानता है। ज्ञानचेतना तो स्वच्छ है, यह चावल के कण के समान स्वच्छ है, तथा राग तो चावल के ऊपर के छिलके के समान है। अकेले छिलके को ही देखने तथा छिलके इकट्ठे करके कूटने लगे तो उसको चावल की (कण की) प्राप्ति कहाँ से होगी? उसीप्रकार जड़ की तथा राग की क्रिया तो छिलके जैसी है, उन छिलकों को ही आत्मा का कार्य मानता है, तथा अंदर के रससहित ऐसे ज्ञानभाव की पहिचान नहीं करता तो उसको अपने में भेदज्ञान नहीं हो सकता तथा दूसरे ज्ञानी की भी वह पहिचान नहीं कर सकता। ज्ञानी का भाव अर्थात् राग से भिन्न रहा हुआ चैतन्यभाव, राग से भिन्न अरागभाव, वह राग को कैसे करेगा?

राग से भिन्न ऐसी ज्ञानचेतना, वह ज्ञान के द्वारा ही पहिचानी जा सकती है, राग के द्वारा नहीं पहिचानी जा सकती। इसलिये कहा है कि ज्ञानी की बात को ज्ञानी ही समझ सकता है।

प्रश्नः—तब अज्ञानी को क्या करना ?

उत्तरः—अज्ञानी को अज्ञान छोड़ करके ज्ञानी हो जाना चाहिये; अपने में राग की भिन्नता का अनुभव किये बिना ज्ञानी को किसप्रकार पहिचान सकेगा ? अंधकार दूर करने के लिये क्या करना ? कि प्रकाश करना। इसीप्रकार अज्ञान दूर करने के लिये क्या करना ? कि अपने में ज्ञान का प्रकाश प्रगट करना। ज्ञान तथा राग की भिन्नता का भेदज्ञान किये बिना धर्म के मार्ग में एक कदम भी आगे बढ़ नहीं सकता। न पंच परमेष्ठी की पहिचान हो सकती, न नवतत्त्व की पहिचान हो सकती, और न सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागी मोक्षमार्ग भी पहिचाना जा सकता है। अज्ञानी तो रागरूप आस्रव-बंध, पुण्य-पापरूप हेय तत्त्वों को ज्ञान में सम्मिलित कर देता है, तथा ज्ञानभाव में राग का कार्य मानता है। रागादि औदयिकभाव तथा ज्ञानभाव, अथवा बंधभाव तथा मोक्षभाव, इनकी अत्यंत भिन्नता को भेदज्ञान द्वारा ही पहिचाना जा सकता है, इनको पहिचाने बिना उसको ज्ञानी क्या करता है, इसकी पहिचान नहीं हो सकती। ज्ञानी ज्ञान करता है या राग करता है ? यह अज्ञानी पहिचान नहीं सकता; अंतरात्मा की गति को बहिरात्मा क्या जानेगा ? ज्ञानी चतुर्थ गुणस्थान से ही पूर्ण ज्ञानचेतना के स्वामित्व रूप से परिणमन करता है, इस अपेक्षा वर्तमान पर्याय में जघन्य अंश में ज्ञानधारा-ज्ञानचेतनारूप परिणमन है ही।

अज्ञानी शुभराग में एकाकार (तन्मय) वर्तता होने से, उस शुभ से भिन्न ज्ञानचेतना को पहिचानता भी नहीं; तथा ज्ञानी अशुभ के समय उससे भिन्न ज्ञानचेतनारूप वर्तते हैं; उस समय अकेले (मात्र) शुभ-अशुभ राग को ही देखनेवाला बाह्य दृष्टि जीव ज्ञानी के अंतर की ज्ञानचेतना की पहिचान कहाँ से करेगा ? वह तो बाहर के शुभ-अशुभभावों को ही देखनेवाला है। शुभराग की क्रिया में विशुद्धि, निर्जरा और शुद्धभाव मानकर राग से ही वीतरागधर्म मान रहा है—यदि वह रागरहित ज्ञानचेतना की पहिचान कर ले तो वह स्वयं ज्ञानी हो जावे, तथा अन्य ज्ञानी क्या करते हैं (ज्ञान करते हैं या राग करते हैं), इसकी भी उसको सच्ची पहिचान हो जाती है। ऐसी पहिचान करना, यह सम्यग्दर्शन है, वह धर्म है।

धर्मी जीव सम्यग्दर्शन के द्वारा अपने आत्मा को शुद्ध चैतन्यमय अनुभव करते हुए ऐसे निर्भय हो जाते हैं कि वज्र भी आ पड़े तो भी अपने मार्ग से चलायमान नहीं होते, जिस स्वभाव को पहिचाना, उससे चलायमान नहीं होते, ऐसे भयभीत नहीं होते कि 'इस वज्र से मेरे ज्ञान का नाश हो जायेगा! शंका नहीं करते; निःशंक वर्तते हुए निर्भयता से अपने ज्ञानस्वरूप का ही

अनुभव करते हैं। जगत घोर कलंकित कर दे, चारों ओर से प्रतिकूलता आ जाये, निंदा की झड़ियाँ बरसती हों, तथा शरीर में रोग की तीव्र असह्य वेदना होती हो, तो भी धर्मी अपने चिदानंदस्वरूप की श्रद्धा से चलायमान नहीं होता, 'मेरा क्या होगा'—ऐसा भयभीत नहीं होता; 'मैं तो ज्ञान हूँ तथा ज्ञान ही रहूँगा, मेरे ज्ञान में उस प्रतिकूलता का प्रवेश कैसा? राग का भी प्रवेश मेरे ज्ञान में नहीं'—इसप्रकार निःशंकता से सदा सतत ज्ञान का ही अनुभव करता हुआ धर्मी जीव निर्भय रहता है।

इस पुद्गल से बना हुआ शरीर मेरा नहीं, इसके नाश होने से मेरा नाश नहीं होता; मैं तो ज्ञानशरीरी हूँ, मेरा ज्ञानशरीर वज्र के प्रहार से भी नाश नहीं होता।—इसप्रकार अबध्य ज्ञानरूप ही अपने अस्तित्व का अनुभव करता हुआ धर्मी जीव, चाहे जैसी प्रतिकूलता के समय भी अपने ज्ञानरूप से चलायमान नहीं होता, ज्ञान को अन्यथा मानता नहीं, ऐसा ज्ञानी का परम साहस है, अपूर्व पुरुषार्थ है। चाहे जैसे प्रसंग में ज्ञान को ज्ञानरूप ही अनुभव करना, अन्य किसी भी भव का ज्ञान में प्रवेश नहीं होने देना, ऐसा नित्य समाधान द्वारा प्रतिकूलता के कोलाहल के मध्य भी ज्ञान को धीर-शांत अनुभव करना—ऐसी आत्मश्रद्धा का परम पराक्रम ज्ञानी को ही होता है। वह अनुकूलता या प्रतिकूलता के सभी प्रसंगों में ज्ञानतत्त्व में शंका का त्याग करके, निःशंकता से ऐसा अनुभव करता है कि 'मैं तो ज्ञान हूँ;' मेरा नाश होनेवाला नहीं। इस प्रतिकूलता के व्यूह में मेरा ज्ञान अन्यथा हो जायेगा, या अज्ञानरूप हो जायेगा—ऐसी शंका सम्यग्दृष्टि को उत्पन्न नहीं होती। वह तो अबध्य ऐसे ज्ञानस्वरूप ही परिणमन करता है। ऐसा सामर्थ्य सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी का ही है।

पर से भिन्न, राग से भिन्न, ज्ञानमय आत्मा का ही वेदन करना धर्म है। सच्चा आत्मा वही है कि जो ज्ञानमय परिणमन करता है। शाश्वत ऐसा मेरा ज्ञान, यह कभी मेरे से पृथक् नहीं होता, इसका कभी मरण होता नहीं, अभाव होता नहीं। देह तथा राग, यह कहीं मेरा स्वरूप नहीं, देह तो जड़-पुद्गलों की रचना है, यह कहीं मेरी रचना नहीं, राग भी मेरी रचना नहीं; मेरी रचना तो ज्ञान है। ज्ञान के द्वारा मैं सदा जीवित हूँ, मेरा मरण होता ही नहीं, फिर भय कैसा?—'अब हम अमर भये न मरेंगे।' रागादि से भिन्न, ज्ञानी की ऐसी ज्ञानचेतना को ज्ञानी ही पहिचानता है। (समयसार कलश १५३-१५४)

यह बात जीव ने कभी सुनी नहीं

[जामनगर शहर में पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों से]
[वीर संवत् २४९६ माघ सुदी १ से ७ तक]

आत्मा देह से भिन्न चैतन्यतत्त्व है, वह सर्वज्ञस्वभाव से परिपूर्ण है। उसको पहिचानकर उसमें एकाग्र होने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा केवलज्ञान प्रगट होता है; उसी को भगवान-परमात्मा कहा जाता है।

जिसप्रकार लैंडी पीपल में चरपराहट है, उसीप्रकार प्रत्येक आत्मा में सर्वज्ञ होने की शक्ति विद्यमान है। ऐसा स्वभाव अपने में होते हुए भी अज्ञानी जीवों ने उसका अनुभव नहीं किया, उसका परिचय या उसका यथार्थ श्रवण पूर्व में कभी नहीं किया। ऐसे स्वभाव को बतलानेवाले ज्ञानियों का समागम भी उसने कभी नहीं किया। इसलिये सुलभ होते हुए भी अपने स्वभाव की बात उसको दुर्लभ हो गई।

ऐसे दुर्लभ एकत्व-विभक्त स्वरूप को आचार्य भगवान ने इस समयसार में बतलाया है। अरे, जीवों! आत्मा के शुद्ध निजानंद स्वरूप के भोग का त्यागकर, शुभाशुभभावरूप इच्छा की तथा भोगने की, बंध की ही बात को श्रवण किया है—उसी का प्रेम किया है; किन्तु आत्मा के स्वभाव में जो अनंतगुणों का निजवैभव है, उसकी प्रीति कभी नहीं की।

शरीर तथा आत्मा का जो संयोग है, उसमें शरीर तो अजीवरूप ही रहा हुआ है तथा आत्मा अपने चैतन्यभाव से ही रहा हुआ है। शरीर अपना अजीवत्व छोड़कर जीव का कभी नहीं हुआ तथा जीव अपना चेतनत्व छोड़कर अजीव का कभी नहीं हुआ।

शरीर का संयोग तो छूट जाता है तथा आत्मा विद्यमान रहता है; शरीर अगर आत्मा का ही हो तो आत्मा से पृथक् होता ही नहीं। ज्ञान, वह आत्मा का स्वरूप है; इसलिये वह कभी आत्मा से पृथक् नहीं होता।

ज्ञानस्वरूप आत्मा शरीर से भिन्न है, शुभ-अशुभ (पुण्य-पाप) भावों से भी ज्ञानस्वरूप भिन्न है। ज्ञान तो पवित्र स्वरूप है, शुभ-अशुभ वृत्तियां तो मलिन हैं। इन मलिन वृत्तियों का ही अनुभव अज्ञानी जीवों ने किया है। इन्द्रिय विषयों के तरफ की अशुभ वृत्तियाँ तो अत्यंत दुःखमय हैं। जैसे शीतल पानी के बाहर आकर तड़फ-तड़फकर मछली दुःखी होती

है, उसीप्रकार ज्ञानसरोवर में से बाहर आकर अशुभ वृत्तियों में रहना, यह तो महान दु:खदायी है, तथा बाहर की शुभ वृत्तियाँ भी दु:खरूप ही हैं। दोनों वृत्तियों से पृथक् ज्ञानानंदस्वरूप जैसे अरिहंत परमात्मा हैं, वैसा ही यह आत्मा है—ऐसा अनुभव करना, ज्ञान करना, वह धर्म है, वह मोक्षमार्ग है।

जड़ के स्पर्श-रस-गंध-वर्ण, उनमें आत्मा का किंचित् भी सुख नहीं है, फिर भी उनमें सुख मानता है, वह अज्ञानी है। चैतन्य सुख को भूलकर बाहर में सुख माना, बाहर के जड़ विषयों को अपना माना, वह जीव मिथ्यादृष्टि है। जड़ से भिन्न अपना अतीन्द्रिय आत्मा, उसको भूलकर अज्ञानी ने क्या किया ?—

❀ आत्मा के आनंद का अनुभव नहीं किया;

❀ जड़ का अनुभव नहीं किया;

❀ शुभ-अशुभ वृत्तियों का ही अनुभव किया।

चिदानंदस्वभाव के एकत्व से विरुद्ध ऐसे इन शुभाशुभ बंधभावों की विकथा जीव ने प्रेमपूर्वक श्रवण की है तथा ऐसे ही भावों का पुन: पुन: मंथन करके अनुभव किया है; इनमें तो आत्मा का अहित ही है। कर्मबंध से रहित चैतन्य का जो वीतरागी आनंदस्वभाव है, उसकी रुचि एक बार भी उत्पन्न कर ले तो अपूर्व भाव प्रगट होकर अल्पकाल में ही अवश्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा स्वयं ही आनंदस्वरूप है, पर से भिन्न अपने एकत्व स्वरूप में ही वह शोभायमान है; किंतु अपने को भूलकर अज्ञान से विकारभावरूप द्वैत उत्पन्न करके उसरूप अपने को अनुभव करता है, पुण्य-पापरूप कषायचक्र में पिसा जा रहा है, मोह के कारण संसारचक्र में परिभ्रमण से दु:खी हो रहा है। ऐसे दु:खी जीवों के ऊपर करुणा करके आचार्यदेव उनको स्वयं का शुद्ध एकत्व स्वरूप बतलाते हैं।

आत्मा में शुभ-अशुभभावों का रंग अनादि से चढ़ाया है किंतु इन दोनों से भिन्न ऐसे चैतन्य का रंग लगाकर आत्मा में नवीन रंग चढ़ाने की यह बात है। शुभ तथा अशुभ ऐसे कषायचक्र के सेवन में ही जीव रुका हुआ है किंतु अनंत गुण की सिद्धि अपने चैतन्यधाम में ही भरी है, उसका जीव अनुभव नहीं करता।

पाँच इन्द्रिय के विषय चैतन्य से भिन्न हैं। इन्द्रियभोगों का सेवन, यह तो पाप है तथा

बाहर के शुभभाव के निमित्तरूप विषय, वे भी इन्द्रियों के ही विषय हैं; भले ही पुण्य का कारण हो—किंतु वे कहीं चैतन्य की जाति के नहीं हैं; चैतन्यस्वरूप नहीं है। चैतन्यस्वरूप तो पाप तथा पुण्य दोनों प्रकार के विषयों से पार है, ऐसे तत्त्व को जीव ने कभी अनुभव में नहीं लिया, इसलिये यह अपूर्व है। भाई! कभी नहीं सेवन किया ऐसे चैतन्य के एकत्व स्वरूप का तू सेवन कर, जिससे तेरा परिभ्रमण दूर होकर तू भगवान हो जायेगा।

जिसप्रकार चमकदार मोती के पानी को जौहरी ही पहिचान सकता है, गाँव का पटेल उसको नहीं पहिचान सकता। उसीप्रकार अनंत गुणों से चमकदार ऐसा चैतन्यरत्न, अतीन्द्रिय आनंद से उल्लसित हो रहा है, उस चैतन्यरत्न को ज्ञानी ही पहिचान सकते हैं। बाह्य पदार्थों का जिनको प्रेम है, ऐसे मंदबुद्धि जीव राग से पार चैतन्यरत्न के तेज को नहीं पहिचान सकते।

अहा! राग तथा आत्मा की जो भिन्नता है, उसका भान होते ही चैतन्य का खजाना खुल गया है। राग के प्रेम के आगे चैतन्य में ताले लग गये थे, किंतु राग से भिन्न होकर अंदर में दृष्टि करे तो वहाँ आनंद का लबालब समुद्र उछल रहा है, अनंत चैतन्य-निधान दृष्टि के समक्ष दिखलाई देते हैं। अपने ऐसे निधान की बात ज्ञानी ने सुनाई, तब भी जीव ने उसकी परवाह नहीं की अर्थात् अपने स्वभाव की बात प्रेम से उसने लक्ष में नहीं ली, उसका श्रवण नहीं किया। इसलिये कभी नहीं सुनी, ऐसी अपने स्वभाव की बात को अपूर्व रुचिपूर्वक श्रवण करना।

स्वयं ने आत्मा को पहिचाना नहीं तथा आत्मा को जाननेवाले 'ज्ञानी' का संग भी नहीं किया। ज्ञानी का संग वास्तव में कब किया कहा जाता है? कि 'ज्ञानी' अर्थात् क्या? उसको प्रथम पहिचाने। कहीं शरीर, यह ज्ञानी नहीं; राग, यह ज्ञानी नहीं; ज्ञानी तो अंतर में राग से पार ज्ञान के अनुभवरूप परिणमित आत्मा है। ऐसे आत्मा को लक्षगत करके ज्ञानी का संग करे, तब ज्ञानी की उपासना की, ऐसा कहा जाता है। इसमें आत्मा के स्वभाव का अपूर्व उत्साह है। राग का उत्साह छोड़कर आत्मा का उत्साह उत्पन्न करे, तब सच्चा श्रवण तथा ज्ञानी का संग किया कहा जाता है।

कषायचक्र अर्थात् पुण्य-पाप के भाव, उनके साथ तन्मय रूप ही अज्ञानी अपने को अनुभव करता है, किंतु कषायों से भिन्न, पुण्य-पाप दोनों से भिन्न अपना एकत्व स्वरूप है, उसका अज्ञानी अनुभव नहीं करता। उस एकत्व स्वरूप को समझना ही परम हितरूप है। पुण्य तथा उसका फल, यह कोई अपूर्व वस्तु नहीं है, इसका तो अनंत बार जीव अनुभव कर चुका

है। किंतु इससे पार चैतन्य के निर्विकल्प आनंद के अनुभवरूप एकत्व की प्राप्ति यह अपूर्व है; पूर्व में कभी यह अनुभव में आया नहीं, इसलिये यह अपूर्व है; ऐसे एकत्वपने में ही जीव की शोभा है, ऐसे एकत्व के अनुभव से ही मोक्ष होता है। इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि अपने आत्मा के निजवैभव से मैं इस समयसार में एकत्व-विभक्त शुद्ध आत्मा का स्वरूप बतलाता हूँ, इसको हे श्रोताजनों! तुम अपने स्वानुभव से प्रमाण करना।

धीर... वीर... गंभीर ज्ञान

ज्ञानचेतना की गंभीर महिमा पूर्वक चर्चा करते हुए स्वामीजी ने कहा कि जिसके संसार का अंत निकट आ गया है, ऐसे मुमुक्षु जीव के लिये यह अध्यात्म का विषय है।

जिसको चैतन्य की रुचि हो गई, जिसको चैतन्य का रंग लग गया तथा उसे जो साधने निकला उसको जगत का चाहे जैसा कोलाहल अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकता। भगवान आत्मा का चेतक स्वभाव किसी के चलित करने पर भी चलायमान नहीं होता, आवरित नहीं किया जा सकता, ऐसे स्वभाव की जो साधना करने निकला, वह किसी से चलायमान नहीं होता। चैतन्य का जगमगाता अखण्ड 'तेज-प्रकाश' उसको प्रगट हुआ है।

उसको चेतना में गंभीरता है... धैर्यता है; उसमें राग की तरफ का उत्साह नहीं है; परभाव की तरंगें उसमें शांत हो गई हैं, उसका प्रयाण धारा-प्रवाह से है, आनंद के साथ एकरूप चेतनपरिणति चक्कर लगाती हुई धीर-गंभीरतापूर्वक निजस्वभाव की ओर चली जाती है; अन्य कहीं भी वह रुकती नहीं है।

अहा! ऐसी चेतना... वह मोक्ष को साधनेवाली है! वह तो मुक्त ही है; किसी से बंधी हुई नहीं है। केवलज्ञान के साथ वह क्रीड़ा करती है।

शत्रुंजय-सिद्धक्षेत्र के ऊपर पांडव मुनिवरों द्वारा वैराग्यभावनाओं का चिंतन

☆★☆★☆★☆★☆★☆★

शत्रुंजय तीर्थ के ऊपर ध्यानमग्न पांडव मुनिवरों के ऊपर जब घोर उपसर्ग आया, तब निजस्वरूप से विचलित हुए बिना वैराग्यपूर्वक उन्होंने बारह भावनाओं का चिंतवन किया। ऐसी भावनाओं के चिंतवन सहित तीन पांडव तो निर्विकल्प चैतन्य-अनुभव में लीन होकर केवलज्ञान प्रगट करके मोक्ष चले गये। प्रत्येक जीव को वस्तुस्वरूप के चिंतवन सहित ऐसी वैराग्यभावना का चिंतवन करना चाहिये। पांडव पुराण के आधार से उस भावना का यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

☆★☆★☆★☆★☆★☆★

प्रथम तो अग्नि के द्वारा जलते हुए निज शरीर को देखकर धीरवीर पांडवों ने असीम सर्वज्ञस्वभावी ध्यान के बल द्वारा क्षमारूपी जल का सिंचन किया; पंचपरमेष्ठी तथा धर्म के चिंतन द्वारा आत्मध्यान में दृढ़ता धारण की। वह जानते थे कि वह अग्नि हमारे आत्मा को जला सकती नहीं, क्योंकि आत्मा तो देह से भिन्न शुद्धचैतन्यस्वरूप, अरूपी है। इस मूर्तिक शरीर को अग्नि भले ही जला डाले, इसमें हमारी क्या हानि होनेवाली है? इस शरीर से भिन्न आत्मा के चिंतवन द्वारा महान उपसर्ग विजयी पांडव मुनिराजों ने ध्यानरूपी अग्नि प्रज्वलित की। बाह्य में तो अग्नि द्वारा शरीर भस्म हो रहा है, तथा उसी समय अंतर में ध्यानाग्नि के द्वारा कर्म भस्म हो रहे हैं! उस समय शत्रुंजय गिरि के ऊपर पांडव मुनिराजों के द्वारा चिंतवन की हुई बारह भावनाएँ इसप्रकार हैं:—

१. अनित्य भावना

भेदविज्ञान की प्रवीणता द्वारा धर्मी जीव चिंतवन करते हैं कि मेरा आत्मा ही मेरे लिये ध्रुव है-उत्तम-मंगल और शरण है।

संसार में जीवन क्षणभंगुर है! बादल के समान देखते-देखते वह विलीन (नष्ट) हो

जाता है। धन-संपत्ति-मकान-कुटुंबीजन-शरीर आदि जो कुछ भी दिखलाई देता है, वह सभी नश्वर है। भोगोपभोग अनित्य हैं, यह किसी के साथ प्रीति करते नहीं, पुण्यशाली चक्रवर्ती को भी जहाँ तक पुण्य का उदय है, वहाँ तक वह सामग्री रहती है, पुण्य के जाते ही वह भी प्रयाण कर जाती है। जगत में केवल एक अपना आत्मा ही ऐसी वस्तु है कि जो सदा शाश्वत रहता है, जिसका कभी वियोग नहीं होता। इसलिए हे आत्मा! तू नित्य निर्मोह ज्ञातास्वरूप के अवलंबन द्वारा समस्त बाह्य वस्तुओं से ममत्व का त्याग करके स्व में ही स्थिर हो जा... यही तेरी वस्तु है।

लक्ष्मी-शरीर सुख-दुःख अथवा शत्रु-मित्रजनों अरे!
जीव को नहीं कुछ ध्रुव, ध्रुव उपयोग-आत्मक जीव है।
छेदाव, या भेदाव, को ले जाव, नष्ट बनो भले,
या अन्य किस रीत जाव, पर परिग्रह नहीं मेरा अरे।

भरत चक्रवर्ती जैसे छह खंड के अधिपति भी जहाँ नित्य नहीं रह सके, तब फिर अरे जीव! तू किससे स्नेह-ममता रखता है?—किसको अपना मानता है? ध्रुव चैतन्य के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु को अपना मानना, यह केवल तेरी मूर्खता ही है। इसलिये ऐसे व्यर्थ विकल्प-जला में न उलझते हुए तू आत्मसिंचन में लग; इसी में जीवन की सार्थकता है।

२. अशरण भावना

जिसप्रकार भूखे सिंह के पंजे में फंसे हुए हिरन के बच्चे की रक्षा करने में कोई समर्थ नहीं; उसीप्रकार मृत्यु के मुख में आये हुए प्राणी की कोई भी रक्षा नहीं कर सकता। कोई ऐसा कहेगा कि हम लोह-निर्मित मकान में रखेंगे, शस्त्र से, धन से इत्यादि से जीव की रक्षा कर देंगे! अथवा किसी औषधि-मंत्र-तंत्र से जीव को बचा देंगे!—तो उसका यह कथन मात्र प्रलापरूप है। वास्तव में जिसकी आयु पूर्ण हो गई, उसकी कोई भी रक्षा नहीं कर सकता। कोई देव, कोई इन्द्र या सुरेन्द्र इत्यादि रक्षा करते हैं, यह भी कथन मात्र है; क्योंकि वह जहाँ स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकते तो अन्य की रक्षा कहाँ से करेंगे? अनित्यतारूप परिणमन करते हुए पदार्थों को कोई भी रोक सकने में समर्थ नहीं है। आत्मा! तू इन सभी के शरण की बुद्धि का त्याग कर, तथा अपने अविनाशी चैतन्यरूप आत्मा का शरण ले; यही तेरा सच्चा शरण है, इसके अतिरिक्त अन्य सभी का शरण झूठा है-व्यर्थ है।

३. संसार भावना

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव तथा भावरूप संसार में यह आत्मा निजस्वरूप को समझे बिना अपने को आप भूलकर ही परिभ्रमण कर रहा है; कभी इस गति में तो कभी दूसरी गति में, कभी राजा तो कभी रंक, कभी देव तो कभी नारकी, कभी द्रव्यलिंगी मुनि तो कभी कसाई—इसप्रकार बहुरूपी बनकर परिभ्रमण कर रहा है; पंच परावर्तन में एक-एक परावर्तन का अनंत काल है। ऐसे पंच परावर्तन इस जीव ने एक बार नहीं किंतु अनंत बार पूर्ण किये हैं, फिर भी इसकी विषयलालसा पूर्ण नहीं हुई, तो अब किसप्रकार होगा! स्वविषय को भूलकर तू सदा अतृप्त होकर ही मरा है। इसलिये हे आत्मा! अब तू विषयलालसा का त्याग करके आत्मस्वरूप में तेरे चित्त को लगा। इस दु:खमय संसार से छूटने का सच्चा उपाय केवल एक ही है कि तू बाह्यविषयों के मोह का त्याग करके आत्मध्यान में लीन हो जा।

४. एकत्व भावना

यह जीव अकेला ही आता है, अकेला ही जन्म-मरण का दु:ख भोगता है, अकेला ही गर्भ में आता है, अकेला ही शरीर धारण करता है, अकेला ही बालक-जवान-वृद्ध होता है, तथा अकेला ही मरता है। इस जीव को सुख-दु:ख में कोई भी साथ देनेवाला नहीं है। अरे जीव! जिस कुटुंब इत्यादि को तू तेरा मानता है, वह वास्तव में तेरा नहीं है। कुटुंब इत्यादि तो दूर रहे, किंतु जिस शरीर को खिला-पिलाकर पुष्ट किया तथा जिसके साथ चौबीस घंटे रहा, फिर भी यह शरीर साथ में नहीं आता तो अन्य कौन साथ में आवेगा? इसलिये हे आत्मा! तू क्यों अन्य के लिये पाप का बोझ अपने सिर के ऊपर मोल ले रहा है? तू सदा से अकेला ही है, इसलिये सभी का मोह त्यागकर केवल एक तेरे आत्मा का ही चिंतवन कर।

जीव अकेला ही मरे, स्वयं जीव अकेला जन्मे अरे!
जीव एक का होवे मरण, जीव अकेला सिद्धि लहे॥१०१॥
मेरा सुशाश्वत एक दर्शन-ज्ञान-लक्षण जीव है;
बाकी सभी संयोगलक्षण भाव मुझसे बाह्य हैं॥१०२॥

५. अन्यत्व भावना

जल तथा दूध के समान अर्थात् क्षीर-नीरवत् शरीर तथा आत्मा का संयोग दिखलाई देता है, किंतु जिसप्रकार वास्तव में दूध तथा पानी भिन्न-भिन्न हैं, उसीप्रकार शरीर तथा आत्मा भिन्न-भिन्न हैं। हे आत्मा! उनको एक समझना, यह भूल है। तेरा तो एकरूप ज्ञायकभाव है, स्वाश्रित श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रभाव तू है; रत्नत्रयस्वरूप आत्मा ही तेरा है। इसलिये किसी अन्य के आश्रय से शांति प्राप्त होगी, ऐसी आशा का त्याग करके तू तेरे एकत्व-स्वरूप में ही स्थिर हो जा। तेरी एकता से ही तेरी शोभा है, अन्य से तेरी शोभा नहीं है। अन्य से भिन्न अनन्यस्वरूप आत्मा का ही चिंतवन कर।

६. अशुचि भावना

यह शरीर तो अशुचि का पिटारा-निवास है, मांस-हड्डी-रुधिर-पीप इत्यादि से निर्मित है, इसके नौ द्वारों में से घृणाजनक मल प्रवाहित होता ही रहता है; चंदनादि उत्तम से उत्तम पदार्थ भी इस शरीर से स्पर्श-संबंध होते ही दूषित हो जाते हैं। तब फिर अरे आत्मा! तू ऐसे अशुचि के स्थानरूप शरीर के प्रति मोह तथा प्रेम क्यों करता है ?—यह तेरी महान भूल है कि तू इस मलिन देह में मूर्छित हो रहा है। कहाँ तो तेरा निर्मलस्वरूप तथा कहाँ इसका मलिन स्वभाव! इसलिये शरीर को हेय समझकर तू शीघ्र इसके ऊपर से मोह का त्याग कर, तथा तेरी ज्ञानगंगा में स्नान करके पवित्र हो जा, इसी में तेरी बुद्धिमत्ता है। (शुभाशुभभाव अशुद्ध हैं-अशुचि हैं, आत्मा उनसे रहित शुद्ध-शुचि है। स्वाश्रय से पराश्रय का निरोध होता है। बीते काल अनंत जो कर्म शुभाशुभभाव, वही शुभाशुभ छेदते उपजै मोक्ष स्वभाव।)

७. आस्रव भावना

समुद्र में पड़ी हुई छिद्रवाली नौका में जिसप्रकार सतत पानी आता ही रहता है; उसीप्रकार मोहरूपी छिद्र के द्वारा आत्मा में कर्म आते ही रहते हैं। कर्मों के आने का प्रधान कारण अपनी भूलरूपी मिथ्यात्व है। हे आत्मा! यह आस्रव ही तुझे संसार-समुद्र में डुबानेवाला है, इसलिये तू चैतन्य की जागृति के द्वारा आस्रवों का त्याग करके निरास्रवी हो

जा। ऐसा करने से ही तेरी आत्मा नौका इस भवसमुद्र से पार होगी।

८. संवर भावना

आस्रव को रोकना, यही संवर है। सम्यग्दर्शनपूर्वक आत्मध्यान के द्वारा संवर होता है। प्रथम से ही सम्यग्दर्शन मात्र से अनंत संसार का संवर हो जाता है। संवर हो जाने बाद फिर से यह आत्मा संसार में परिभ्रमण नहीं करता; इसको मोक्ष का मार्ग प्राप्त हो जाता है। इसलिये हे आत्मा! अब तू संसार के झंझटों का त्याग करके पुनीत संवर का आश्रय ले।

मिथ्यात्व-आदिक भाव को, चिरकाल भाया जीव ने,
सम्यक्त्व-आदिक भाव रे, पहले कभी भाये नहीं।
भवचक्र में भ्रमते कभी, भायी नहीं जो भावना,
भवनाश करने अर्थ मैं, भाऊँ अपूरव भावना।

अहो! भव का नाश करनेवाली, अपूर्व आत्मभावना का इसी क्षण चिंतन करो।

उपयोग में उपयोग है, उपयोग नहीं क्रोधादि में,
है क्रोध क्रोध में ही नियम से, क्रोध नहीं उपयोग में।
ऐसा अविपरीत ज्ञान जब, उत्पन्न होवे जीव को,
तब ही न कुछ भी भाव वह उपयोग शुद्धात्मा करे।

९. निर्जरा भावना

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के द्वारा कर्मों की निर्जरा होती है। जिसप्रकार प्रज्वलित अग्नि के द्वारा पात्र में भरा हुआ सभी पानी शोषित हो जाता है, उसीप्रकार उग्र आत्मभावना के प्रताप (तेज) से विकार जल जाते हैं; तथा कर्म निर्जरित हो जाते हैं। निर्जरा दो प्रकार की है—इसमें सविपाक निर्जरा तो सभी जीवों को होती है; अविपाक निर्जरा सम्यग्दृष्टि, व्रतधारी, मुनियों के ही होती है, तथा यही आत्मा को कार्यकारी है। इसलिये हे आत्मा! तू आत्मध्यान की उग्रता के द्वारा अविपाक निर्जरा का आचरण कर कि जिससे पंचम ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त होने में विलंब नहीं हो। अहो! सम्यग्दर्शन होते ही अनंती निर्जरा प्रारंभ हो जाती है, इसलिय इस समय इतना तो अवश्य कर। तेरे स्वभाव का सम्यग्दर्शन भी धीरे-धीरे आठों कर्मों को जलाकर राख कर देगा।

इसमें सदा प्रीतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट हो,
इससे ही बन तू तृप्त, सुख उत्तम तुझे! मिल जायेगा।

१०. लोक भावना

यह लोक (जो छह जाति के द्रव्यों का समूह अर्थात् विश्व-जगत है वह) किसी के द्वारा निर्मित नहीं है, कोई इसका नाश नहीं कर सकता, इसको किसी ने उठा भी नहीं रखा अर्थात् किसी के आधार से टिका हुआ नहीं; यह तो अनादिसिद्ध अकृत्रिम निरालंबी है। अनंत लोक के मध्य जिसप्रकार यह लोक निरालंबी स्थित है, उसीप्रकार तेरा आत्मा भी किसी आलंबन से रहित है। इसलिये भूतार्थ के परिग्रहण द्वारा परालंबी बुद्धि का त्याग कर अर्थात् तू अपने आत्मा का ही अवलंबन ले कि जिससे तेरी लोकयात्रा पूर्ण होकर लोक का सर्वोत्कृष्ट स्थान तेरे को प्राप्त हो जाये। कमर पर हाथ लगाकर पाँव फैलाये हुए पुरुषाकार की भाँति इस लोक का आकार है।—ऐसे इस लोक में जीव सम्यग्दर्शन तथा समताभाव से रहित अनंत काल तक इधर-उधर परिभ्रमण कर रहा है। इसलिये हे आत्मा! तू ऊर्ध्व-मध्य तथा अधोलोक के विचित्र स्वरूप का विचार करके लोक में सर्वोत्कृष्ट महिमावंत ऐसे तेरे आत्मा में स्थिर हो जा कि जिससे तेरा लोकभ्रमण रुककर स्थिर सिद्धदशा प्रगट हो जावे। लोक का एक भी प्रदेश आगे-पीछे हो सकता नहीं, उसीप्रकार लोक में एक भी द्रव्य की संख्या में वृद्धि या हानि कभी होती नहीं।

११. बोधिदुर्लभ भावना

जीव को मनुष्य पर्याय, उत्तम कुल, निरोग शरीर, दीर्घ आयुष्य, जैनशासन, सत्संग तथा जिनवाणी का श्रवण—यह सभी प्राप्त होना उत्तरोत्तर-(एक दूसरे से) दुर्लभ है। पुण्योदय से यह सभी मिलने पर भी धर्मबुद्धि जागृत होना, यह दुर्लभ है; ऐसी बुद्धि जागृत होने के बाद अंतर में सम्यक्त्व का परिणमन होना, यह परम दुर्लभ अपूर्व है। सम्यक्त्व के बाद मुनिधर्म को धारण करना, यह दुर्लभ है तथा मुनिधर्म प्राप्त होने के बाद स्वरूप में स्थिर होकर केवलज्ञान प्रगट करना, यह सबसे दुर्लभ है।

इसलिये हे आत्मा! तेरे को यह महान दुर्लभ संयोग प्राप्त हो जाने से अब अति अपूर्व

ऐसे आत्मबोध के लिये प्रयत्नशील हो जा। यह परम दुर्लभ होने पर भी श्रीगुरुचरण के प्रसाद से आत्मरुचि के बल से तुझको यह सहज सुलभ हो जायेगा। ऐसे सम्यक्त्व को प्रगट करना यही सच्चा लाभ है, यही सच्चा सुख है। सम्यक्त्व प्रगट हो जाने से तेरी नौका पार हो जायेगी। इस परम दुर्लभ सम्यक्त्वरूपी बाण से रहित यह योद्धा जीव संसार में भ्रमण कर रहा है। जिसप्रकार योद्धा के पास कमान हो और तीर न हीं हो तो वह अपने लक्ष्य का निशान साध नहीं सकता, उसीप्रकार योद्धा जीव के पास ज्ञान के विकास रूपी कमान तो है किंतु लक्ष्यवेधक बाण अर्थात् चैतन्य को लक्ष्य में लेनेवाला सम्यक्त्व नहीं होने से ही वह मोह का छेदन नहीं करता और नित्य निर्मोह ज्ञान के आश्रय किये बिना मोह का छेदन नहीं कर सकने के कारण ही संसार से मुक्त नहीं हो सकता। इसलिये हे जीव! तू इस सम्यक्त्वरूपी तीक्ष्णबाण द्वारा मोह का भेदन-नाश कर दे—जिससे संसार के कारागृह में से मुक्त होकर मोक्षसुख प्रगट हो जाये-प्राप्त हो जाये।

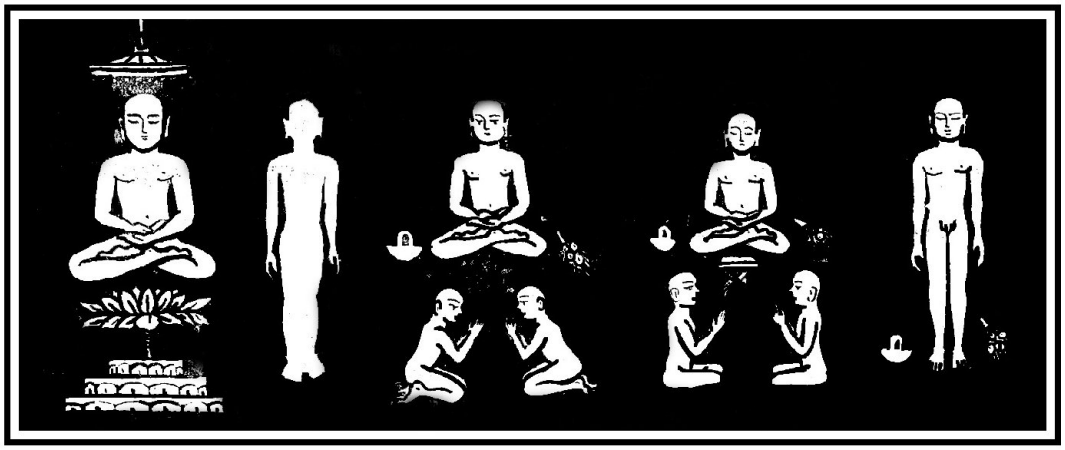

१२. धर्मभावना

सम्यग्दर्शनादि रूप जो धर्म है, इससे इस जीव को सुखा की प्राप्ति होती है। धर्म तो आत्मा के उस भाव का नाम है कि जो आत्मभाव दुःख-अवस्था से मुक्त करके सुखस्वरूप शिवधाम में स्थापित कर दे। इसलिये हे आत्मा! तू भावमोह से उत्पन्न होनेवाले विकल्पों का त्याग करके शुद्ध चैतन्यस्वरूप से तेरे आत्मा का दर्शन करके उस ही में लीन हो जा, यही धर्म

है तथा यही तुझे सुखकारी है। इसके अतिरिक्त संसार में जो विविध विषमतामय धर्म दिखलाई दे रहे हैं, वह वास्तव में धर्म नहीं हैं। तू यह बात पूर्णतया समझकर निश्चय कर ले कि आत्मा की वीतरागभावरूप विशुद्धि यही धर्म है, तथा ऐसे धर्म को धारण करने के अविचलित सुख की प्राप्ति होती है।

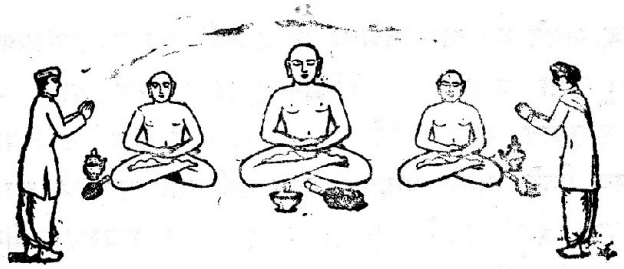

—इसप्रकार बारह भावनाओं का चिंतवन करते हुए समस्त संसारभावों से विरक्त होकर पांडव मुनिवर चैतन्य-अनुभव में लीन हो गये। युधिष्ठिर-भीम-अर्जुन यह तीन मुनिवर शुद्धोपयोग की उग्रता के द्वारा क्षपकश्रेणी में चढ़कर घातिकर्मों का घात-नाश करके, अन्त:कृत केवली होकर सिद्धालय में जाकर विराजमान हो गये, उनको नमस्कार हो!

जैसी वैराग्य-भावना का पांडवों ने चिंतवन किया, वैसी भावना का हम सभी को चिंतवन करना चाहिये, क्योंकि वैराग्यभावनारूपी माता तथा भेदविज्ञानरूपी पिता, यह सिद्धि के जनक हैं, सुख उत्पन्न करनेवाले हैं।

सुख की सहेली है अकेली उदासीनता....
उदासीनता अध्यात्म की जननी है।

उपयोग को अंतर्मुख कर!

भाई, तेरे ज्ञान और आनंद का धाम कहाँ है? तेरा स्वस्थान जो असंख्यप्रदेशी परम आत्मा, वही तेरा इष्ट धाम है, उसी में तेरा ज्ञान और आनन्द भरा हुआ है। इसलिये अन्य सभी ओर से इन्द्रिय-मन की ओर दौड़नेवाली वृत्तियों को रोककर उपयोग को अंदर में लगा!—यही तेरे इष्ट का उपदेश है। पाँच इन्द्रियों के बाह्य विषयों में-अशुभ या शुभ में कहीं तेरा इष्ट नहीं है। अत: बाहर की वृत्ति का उत्साह छोड़कर अंतर के इष्ट स्वभाव में उत्साह कर कि जहाँ से सच्चा आनंद मिलेगा।

भगवान का कहा हुआ प्रथमानुयोग (कथा-साहित्य)

जो जीव को धर्म में सहायक हो वही सच्चा मित्र है

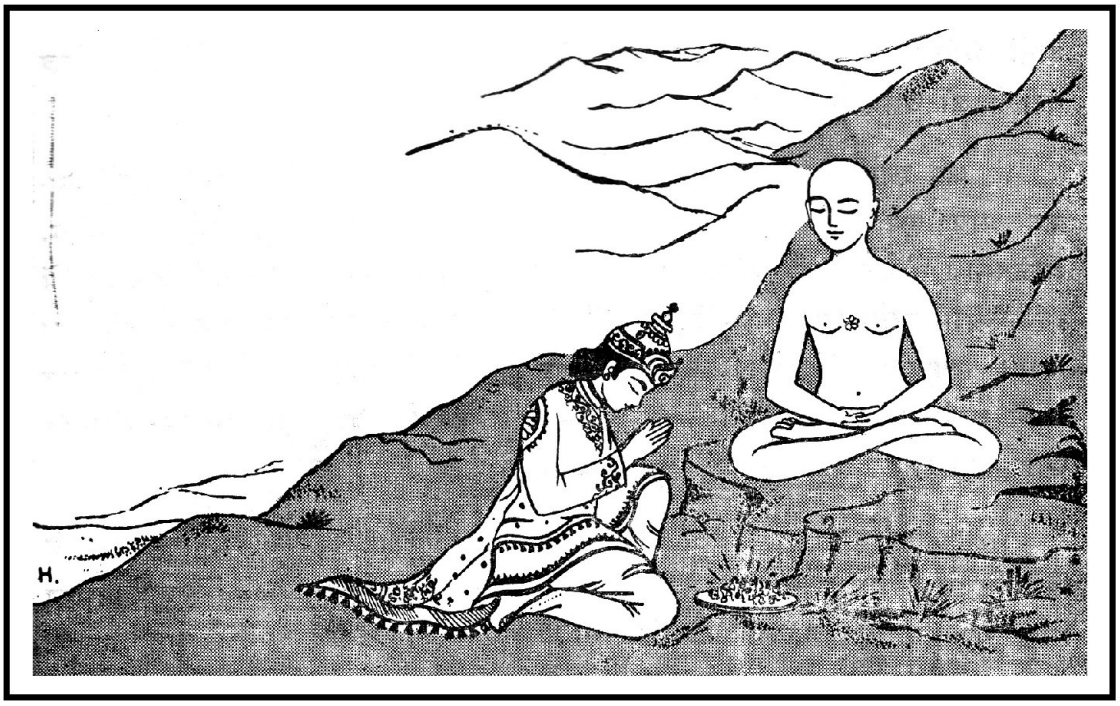

भगवान ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर, महाराजा भरत प्रथम चक्रवर्ती, तथा भगवान अजितनाथ दूसरे तीर्थंकर हुए; इनके पश्चात् सगर नाम के दूसरे चक्रवर्ती हुए; उन सगर चक्रवर्ती की यह कथा है।

सगर चक्रवर्ती पूर्वभव में विदेहक्षेत्र में जयसेन नाम के राजा थे; अपने दो पुत्रों के ऊपर उनको अत्यंत स्नेह था, इन दो पुत्रों में से एक का मरण हो जाने से राजा शोक से मूर्छित हो गये; मूर्छावस्था दूर हो जाने पर शरीर को दु:खों का निवास समझकर जन्म-मरण से मुक्ति प्राप्त करने के लिये दीक्षा लेकर मुनि हो गये, उनके साले महाऋत ने भी उन्हीं के साथ दीक्षा ग्रहण की;

साथ में हजारों राजा भी दीक्षा लेकर मुनिपद धारण करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्ध मोक्षमार्ग की साधना करने लगे।

जयसेन तथा उनका साला महाऋत वे दोनों मुनि समाधिपूर्वक देह त्याग करके सोलहवें अच्युत स्वर्ग में देव हुए। वे एक-दूसरे के मित्र थे, इसलिये उन्होंने एक-दूसरे के साथ ऐसी प्रतिज्ञा की कि अपने दोनों में से जो पहले पृथ्वी पर अवतरित होकर मनुष्य पर्याय धारण करे, उसको दूसरा देव आकर प्रतिबोध दे अर्थात् उसको संसार का स्वरूप समझाकर दीक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा दे। इसप्रकार धर्म में सहायक होने के लिये दोनों मित्रों ने एक-दूसरे के साथ प्रतिज्ञा की। सत्य ही है—जीव का संसार में सच्चा मित्र वही है जो धर्म में सहायक हो।

अब इनमें से जयसेन राजा का जीव बाईस सागरोपम तक देवलोक का सुख भोगकर आयु पूर्ण होते ही मनुष्यलोक में अयोध्या नगरी जहाँ-भूतकाल में ऋषभदेव, अजितनाथ तीर्थंकर तथा प्रथम चक्रवर्ती भरतजी अवतार धारण कर चुके थे, उस नगरी में इक्ष्वाकुवंशी राजा समुद्रविजय के पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ उनका नाम सगरकुमार रखा गया। सगरकुमार दूसरे चक्रवर्ती हुए तथा छह खंड के ऊपर राज्य करने लगे। यह अपने अत्यंत पुण्यवान साठ हजार पुत्रों से सुशोभित थे। इन पुत्रों पर इनका अत्यंत स्नेह था। इनका मित्र मणिकेतु अभी स्वर्ग में ही था।

एकबार किन्हीं मुनिराज को केवलज्ञान हुआ और केवलज्ञान का महान उत्सव मनाने के लिये कितने ही देव आये, इनमें मणिकेतु नाम का देव—जो कि सगरचक्रवर्ती के पूर्व भव का मित्र था—वह भी आया। केवली भगवान की वाणी श्रवण करने के बाद उसको यह जानने की इच्छा हुई कि मेरा मित्र कहाँ उत्पन्न हुआ होगा ? इच्छा उत्पन्न होते ही अपने अवधिज्ञान के बल से यह जान लिया कि पुण्य शेष रह जाने के कारण सगरचक्रवर्ती हुआ है, तथा साथ में ली हुई प्रतिज्ञा का भी स्मरण हो आया। मणिकेतुदेव अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने के हेतु सगर चक्रवर्ती को प्रतिबोध देने के लिये उसके समीप गया। वहाँ जाकर कहा कि—क्यों मित्र, आपको स्मरण है कि आप और हम दोनों अच्युत स्वर्ग में थे, तथा एक-दूसरे के साथ तय किया था कि अपने दोनों में से जो पृथ्वी पर पहले अवतरित हो, उसको यहाँ स्वर्ग में रहा हुआ साथी देव प्रतिबोध दे; इसलिये हे भव्य! आप इस पृथ्वी पर पहले अवतरित हुए हैं तथा मनुष्य में उत्तम ऐसे चक्रवर्ती पद के साम्राज्य को भी चिरकाल तक भोग चुके हो। अरे, सर्प के विष

जैसे दु:खकारक उन भोगों से आत्मा को क्या लाभ है? उनमें किंचित् भी सुख नहीं है, इसलिये हे राजन्! अब उनका त्याग करके मोक्षसुख के लिये पुरुषार्थ करो। अरे, अच्युतस्वर्ग का दैवीवैभव भी असंख्य वर्ष तक भोग चुके, फिर भी इस जीव को तृप्ति नहीं हुई, यह राज्यवैभव तो उसके सामने अति तुच्छ है। इसलिये उसका मोह त्याग कर मोक्षमार्ग में जग जाओ, संसार में यदि सुख होता तो तीर्थंकर क्यों त्यागते?

अपने मित्र मणिकेतुदेव के ऐसे हितकारक वचनों को सगर चक्रवर्ती ने लक्ष में नहीं लिया। वह वैराग्य से विमुख रहे, उनकी ऐसी विमुखता देखकर, 'इसके लिये अभी मुक्ति का मार्ग दूर है' ऐसा विचार करके देव अपने स्थान पर चला गया। सत्य ही है कि सज्जन पुरुष तो अहित की बात ही नहीं करते, किंतु हित की बात भी योग्य समय का विचार करके ही करते हैं। अरे, धिक्कार है इन संसार भोगों को—जो मनुष्य को अपने वचन से चलित कर देते हैं।

कितना ही समय व्यतीत हो जाने के बाद मणिकेतुदेव फिर से उस पृथ्वी पर आया; अपने मित्र को संसार से विरक्त करके मुनिदशा अंगीकार करवाने के हेतु दूसरा उपाय करने का विचार करके इस समय उसने एक चारणऋद्धिधारी उत्तम मुनि का रूप धारण किया। यह तेजस्वी मुनिराज अयोध्या नगरी में आये तथा जिनेन्द्र भगवान को वंदन करके सगर चक्रवर्ती के ही चैत्यालय में रहे। जब चक्रवर्ती इस चैत्यालय में आये, तब उन मुनिराज को देखकर अत्यंत आश्चर्यचकित हुए; भक्ति से मुनि को वंदन करके पूछा—प्रभु! ऐसी अल्प वय में आपने मुनिपद क्यों धारण किया?

तब अत्यंत वैराग्य से उन चरण मुनिराज ने कहा—हे राजन! इस युवावस्था का क्या भरोसा? युवावस्था क्षीण होकर वृद्धावस्था आ जाती है। आयुष्य तो प्रतिदिन कम होती जाती है, शरीर तो मलों का घर है, विषय तो पाप से लबालब भरे हैं, उनमें दु:ख ही है, ऐसे अपवित्र अनित्य तथा पापमय संसार का मोह कैसा? वह तो त्याग करने योग्य ही है। प्रिय वस्तु का वियोग तथा अप्रिय वस्तु का संयोग संसार में होता रहता है। कर्मरूपी शत्रु के द्वारा संसार में जीव की ऐसी ही दशा होती है। इसलिये आत्मध्यानरूपी अग्नि के द्वारा कर्मों को जलाकर मैं अविनाशी मोक्षपद को प्राप्त करूँगा। हे राजन्! आप भी इस संसार का मोह त्यागकर मोक्ष का पुरुषार्थ करो।

मुनि के रूप में रहे हुए मणिकेतुदेव के ऐस वैराग्ययुक्त वचनों का श्रवण करके

सगरचक्रवर्ती संसार से भयभीत तो हो गये किंतु पुत्रों से तीव्र स्नेह होने के कारण मुनिदशा अंगीकार नहीं कर सके। अरे, स्नेह का बंधन कैसा दृढ़ है। राजा का ऐसा मोह देखकर मणिकेतुदेव को विषाद हुआ; तथा अभी भी उसका संसार शेष है—ऐसा विचार करके चले गया। अरे! देखो तो सही! इस साम्राज्य की तुच्छ लक्ष्मी के वशीभूत होकर चक्रवर्ती भी अपने पूर्वभव की अच्युतस्वर्ग की लक्ष्मी को भी भूल गया है। स्वर्ग की विभूति के पास यह सम्पदा किस काम की—कि जिसके तीव्र मोह में जीव फंसा हुआ है। किंतु मोही जीव को अच्छे-बुरे का विवेक नहीं रहता। वास्तव में तो यह चक्रवर्ती पुत्रों में ही सर्वस्व समझकर उनमें मोहित हो गया है, पुत्रप्रेम में इतना तल्लीन हो गया कि स्वर्ग-मोक्ष का उद्यम ही भूल गया है।

उस चक्रवर्ती के ६० हजार सुंदर पुत्र थे। सिंह-शिशु के समान शूरवीर तथा प्रतापवंत राजपुत्र एक बार राज्यसभा में आये। विनयपूर्वक कहने लगे कि हे पिताश्री! यौवनवय में शोभित हो, ऐसा कोई साहस का कार्य हमको बतलाओ।

तब चक्रवर्ती ने हर्षित होकर कहा कि हे पुत्रों! चक्र के द्वारा अपने सभी कार्य सिद्ध हो चुके हैं; हिमवन पर्वत या लवण समुद्र के मध्य (छह खण्ड) में भी ऐसी कोई वस्तु शेष नहीं रही जो अपने को प्राप्त नहीं हुई हों! इसलिये तुम्हारे लिये तो अब एक ही काम शेष रहा कि उस राज्यलक्ष्मी का यथायोग्य भोग करो।

शुद्ध भावनावाले इन राज्यपुत्रों ने फिर से आग्रह किया कि हे पिताजी! हमको धर्म की सेवा का कार्य सुपुर्द करो; अगर आप हमको कुछ भी कार्य सुपुर्द नहीं करना चाहते तो हम भोजन नहीं करेंगे; (सभी राजपुत्र चरमशरीरी धर्मात्मा थे; उनकी यह मांग ऐसा आदर्श प्रस्तुत करती है कि वयस्कों को धर्मकार्य में विवेक और उत्साह से भाग लेना चाहिए।) उत्साही राजपुत्रों का ऐसा आग्रह देखकर राजा को चिंता हुई कि इनको कौन सा कार्य सुपुर्द किया जाये? विचार करते हुए याद आया कि—हाँ, मेरे पहले भरतचक्रवर्ती ने कैलाशपर्वत के ऊपर महारत्नों से (तीन चौबीसी के) २४ अरिहंतों के मंदिर तथा जिनबिंब निर्मित किये हैं, उनकी रक्षा के लिये चारों तरफ खाई खोदकर उन्हें गंगा नदी के पानी से भर दिया जाये तो इन मंदिरों की रक्षा हो सकती है।—ऐसा विचार करके राजपुत्रों को यह कार्य सुपुर्द किया।

पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके दण्डरत्न लेकर राजपुत्र कैलाश पर्वत के ऊपर गये; अत्यंत भक्तिपूर्वक भरतचक्रवर्ती द्वारा निर्मित जिनबिंबों के दर्शन किये। अहा! ऐसे अद्‌भुत

रत्नमय जिनबिंब हमने कभी नहीं देखे, हमें ऐसे भगवान की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ; इसप्रकार परम आनंदित होकर उन्होंने तीनों चौबीसी के जिनेश्वरों के दर्शन किये, तथा भक्तिपूर्वक अपने को सुपुर्द किया हुआ कार्य करने लगे।

इस तरफ चक्रवर्ती का मित्र मणिकेतुदेव फिर से राजा को समझाने के लिये आया। इस समय उसने कोई नया उपाय करने का विचार किया। किसी समय हितरूप वचन मीठे होते हैं तथा किसी समय हितरूप वचन भी कड़वे होते हैं। उसीप्रकार अहितवचन भी किसी समय कड़वे अथवा मीठे भी होते हैं। ऐसे दोनों प्रकार के अहित वचन तो त्याग करने योग्य हैं। राजा को इस समय हितरूप कड़वे वचनों से ही समझाया जा सकता है—ऐसा विचार करके मणिकेतुदेव ने राजा के हित के लिये एक युक्ति का आश्रय लिया।

उसने एक महान विषधर नाग का रूप धारण किया, तथा कैलाशपर्वत पर जाकर उसने सभी राजकुमारों को डस करके ऐसा मूर्छित कर दिया कि मानों मृत्यु हो गई हो, ऐसा वातावरण बना दिया। मंत्री जानते थे कि पुत्रों के ऊपर राजा का अत्यंत स्नेह है, इसलिये उनके मरण का समाचार राजा श्रवण नहीं कर सकेगा। पुत्रों के मरण का समाचार राजा से कहने की किसी की हिम्मत नहीं हुई।

इस तरफ मणिकेतुदेव एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण करके सगर चक्रवर्ती के पास आया और अत्यंत शोकपूर्वक कहने लगा कि हे महाराज! मेरे इकलौते वयस्क पुत्र का मरण हो गया, यमराज उसको हर गया; आप तो समस्त लोक के पालक हैं, इसलिये मेरे पुत्र को वापस लाकर मुझे दें, उसको जीवित कर दें, अगर आप मेरे इकलौते पुत्र को जीवित न करोगे तो मेरी भी मृत्यु हो जायेगी।

ब्राह्मण की बात श्रवण करके राजा ने कहा कि—अरे ब्राह्मण! क्या तू यह नहीं जानता कि यमराज तो एकमात्र सिद्धभगवान के द्वारा ही जीता जा सकता है, संसार में अन्य कोई भी उसको जीत नहीं सकता। केवल सिद्धभगवान ही मरण से रहित हैं; अन्य जीव तो मरण सहित ही हैं—यह बात सभी कोई जानते हैं। जिसका आयुष्य पूर्ण हो गया, उसको किसी भी प्रकार जीवित नहीं किया जा सकता। सभी अपनी अपनी आयुष्य के अनुसार ही जीवित रहते हैं। आयुष्य पूर्ण हो जाने पर यमराज उसका नाश कर देते हैं अर्थात् उसका मरण हो जाता है। इसलिये मरणरूप यमराज को आप जीतना चाहते हो तो आप शीघ्र सिद्धपद की साधना करो।

इस जीर्ण-शीर्ण शरीर के मोह का तथा पुत्रों के शोक का त्याग करके मोक्ष की प्राप्ति के लिये तत्पर होकर जिनदीक्षा धारण करो। घर में पड़े रहकर वृद्ध होने के बदले दीक्षा लेकर मोक्ष की साधना करो।

इसप्रकार राजा ने वैराग्य का खूब उपदेश दिया, तब तब ब्राह्मण ने (अर्थात् पूर्वभव के भाई समान मणिकेतुदेव ने) कहा; कि हे महाराज! यह बात जो आप कहते हो, अगर वास्तव में सत्य है तो मेरी भी बात आप श्रवण करो। अगर यमराज से कोई बलवान नहीं है अर्थात् मृत्यु से कोई बच नहीं सकता—ऐसा आप कहते हो, तो मैं भी आपको जो समाचार कहूँ, वह श्रवण करके भयभीत मत होना; आप भी संसार से वैराग्यवान होकर मोक्ष साधने के लिये तत्पर हो जाना।—ऐसा कहकर उसने कहा:—हे राजन! सुनो! कैलाशपर्वत पर गये हुए आपके साठ हजार पुत्र मरण को प्राप्त हो गये हैं। एक साथ साठ हजार पुत्रों का कलेऊ कर जानेवाले ऐसा दुष्ट यमराज को जीतने के लिये मेरे समान आपको भी मोह छोड़कर शीघ्र दीक्षा लेकर मोक्ष की साधना करना चाहिये।

ब्राह्मण के वज्रपात जैसे वचनों का श्रवण करते ही राजा का हृदय छिन्न-भिन्न हो गया एवं पुत्र-मरण के आघात से मूर्छित हो गये। जिनके ऊपर अत्यंत स्नेह था, ऐसे साठ हजार राजकुमारों के एकसाथ मरण होने की बात उनसे सुनी नहीं जा सकी, उसको सुनते ही मूर्च्छा आ गई; किंतु वह राजा आत्मज्ञानी था। थोड़ी देर में मूर्च्छा दूर होने के बाद चेतना आते ही उसने विचार किया कि अरे! व्यर्थ का दु:ख किसके लिये? दु:ख उत्पन्न करनेवाली यह राजलक्ष्मी या कुटुम्ब-परिवार कुछ भी तो मेरा नहीं है, अब मुझे किसी का भी मोह नहीं है। मैं तो ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण तत्त्व हूँ। अन्य कोई भी इस जगत में मेरा नहीं है। मैं व्यर्थ के मोह में फंस गया। अब उस मोह का त्याग करके मैं जिनदीक्षा धारण करके अशरीरी मोक्षपद की साधना करूँगा। शरीर अपवित्र है तथा विषय-भोग क्षणभंगुर हैं—ऐसा जानकर ऋषभ आदि तीर्थंकर उसका त्याग करके वन में चले गये और चैतन्य में लीन होकर केवलज्ञान प्राप्त किया। अब मैं भी उन्हीं के मार्ग पर जाऊँगा। मैं मूर्ख अभी तक विषयों में ही डूबा हुआ रहा, अब मुझे एक क्षण भी संसार में रहना नहीं है।

इसप्रकार विचार करके सगरचक्रवर्ती दृढ़वर्मा केवली के पास दीक्षा धारण करके चैतन्य के ध्यानरूप तप के द्वारा सुशोभित होने लगे।

इसप्रकार अपना कार्य पूर्ण हुआ समझकर मन ही मन उन मुनिराज को नमस्कार करके मणिकेतुदेव कैलाशपर्वत पर गया; वहाँ जाकर सभी राजपुत्रों की मूर्च्छा दूर करके सचेतन करके कहने लगा कि हे राजकुमारो! तुम्हारी मृत्यु के समाचार श्रवण करके सगर महाराज संसार से वैराग्य प्राप्त करके दीक्षा लेकर मुनि हो गये हैं; इसलिये मैं आपको बुलाने आया हूँ।

अहा, यह चरमशरीरी ६० हजार राजकुमार पिताश्री के वैराग्य की बात श्रवण करते ही तत्काल उदासीन हो गये, एवं संसार से विरक्त होकर सभी राजकुमारों ने श्री जिनेन्द्र भगवान की शरण में दिगम्बर मुनिदशा धारण कर ली।—वाह, धन्य है उन मुनिवरों को! धन्य है उन वैरागी राजपुत्रों को!

मणिकेतुदेव ने अपना सच्चा रूप प्रगट करके उन सभी मुनिराजों को नमस्कार किया; तथा अपने मित्र के हित के लिये ऐसी माया रचनी पड़ी, इसके बदल क्षमा माँगी! मुनियों ने उनको सांत्वना देकर कहा कि इसमें तुम्हारा क्या अपराध? तुमने तो हमारे महान् हित का कार्य किया।

मित्र को मोक्षमार्ग की प्रेरणा प्रदान करने का अपना कार्य सिद्ध हो गया, इससे प्रसन्न होकर वह देव अपने स्वर्ग में चला गया। सगरचक्रवर्ती तथा ६० हजार राजपुत्र, यह सभी मुनिराज आत्मा के ज्ञान-ध्यानपूर्वक विहार करते हुए अंत में सम्मेदशिखर के ऊपर आये। वहाँ पर शुक्लध्यान के द्वारा केवलज्ञान प्रगट करके मोक्ष को प्राप्त किया। उनको नमस्कार हो।

शास्त्रकार कहते हैं कि इस जगत में जीव को धर्म की प्रेरणा प्रदान करनेवाले मित्र के समान हितकर कोई भी नहीं है।

मित्र हो तो ऐसा हो, जो धर्म की प्रेरणा प्रदान करे। *(महापुराण : अध्याय ४८ से)*

सत्संग जीव को जागृत रखकर वैराग्य की प्रेरणा देता रहता है।

❀ गुरुदेव कहते हैं कि—अरे, इस संसार में वैराग्य के प्रसंग तो सदा बनते ही रहते हैं। कर्मरूपी शत्रु ने जीव को दु:खी करने के लिये इस शरीररूपी पिंजरे का निर्माण किया है। इस पिंजरे में रहना जीव को कैसे अच्छा लगता होगा ? जीव अपने को भूलकर इस पिंजरे को ही अपना स्वरूप मान बैठा है, इसलिये वह इस पिंजरे को छोड़ते समय दु:खी होता है।

❀ अरे जीव ! तू विचार कर ! क्या देह का पिंजरा छूटने से तेरे आत्मा में कोई कमी हो गई ? यहाँ अथवा अन्यत्र चाहे जहाँ आत्मा अपने अनंत गुण एवं ज्ञान-आनंद सहित ही सदा विराजमान है, उसका अस्तित्व कभी नष्ट नहीं होता, या उनका कोई भी गुण कम-अधिक नहीं होता। फिर दु:ख काहे का ? मात्र मोह का दु:ख है, जो मृत्यु से भी अधिक है।

❀ मुमुक्षु जीव को विचार करना चाहिये कि—जगत में मृत्यु इत्यादि प्रसंग उपस्थित होने पर भी क्या वीतराग को खेद होता है ?—किंचित् नहीं होता। यदि वीतराग खेद नहीं करते तो मैं किसलिये दु:खी होऊँ ?—मैं भी क्या वीतराग जैसा नहीं ? क्या मुझे वीतरागता से प्रेम नहीं है ? क्या मुझे वीतराग नहीं होना है ? मुझे वीतरागता की रुचि है, तो ऐसे अल्प प्रतिकूल प्रसंग पर दु:खी होने में मेरी शोभा नहीं।—इसप्रकार सहनशील बनकर हे जीव ! तू वीतरागी आदर्श को धारण कर।

❀ जागृत जीव स्वयं ही अपनी शक्ति से किसी भी प्रतिकूल संयोग के समय समाधान कर सकता है। सत्संग का वातावरण प्रत्येक क्षण जीव को जागृत रखकर वैराग्य की प्रेरणा प्रदान करता है। जगत के किसी भी अनिष्ट की शक्ति नहीं कि आत्मार्थी की वैराग्य परिणति को तोड़ सके। रामचंद्रजी द्वारा किया गया अपमान या वनवास सीताजी की ज्ञान-वैराग्य दशा को किंचित् भी चलायमान नहीं कर सके। घोरातिघोर कलंक तथा मृत्युदंड भी वीर सुदर्शन सेठ को वैराग्य-भावना से डिगा नहीं सके।

❀ मैं ज्ञान हूँ—ऐसी निजानंद की अनुभूति में से सम्यक्त्वी को जगत में कौन

चलायमान कर सकता है ? दूर के दृष्टांत कहाँ ढूँढ़ने जायें !—अपनी दृष्टि के समक्ष ही ज्ञानीजन किसप्रकार वीतरागभाव से शोभायमान हो रहे हैं। कितना श्रेष्ठ है उनका आत्मभाव ! हम भी उनके भक्त हैं न ! उनके जैसा वीतरागी भाव तथा आत्मभाव हमें इनके पास से सीखना है। यही समाधान का उपाय है, यही शांति की राह है, यही कर्तव्य है।

स्वानुभव का रंग और उसकी भूमिका

मुमुक्षु जीव को शुद्धात्मा के चिंतवन का अभ्यास होता है। चैतन्य के स्वानुभव का जिसको रंग लगा, उसे संसार का रंग उतर जाता है। भाई, जब तू प्रथम श्रद्धा में अशुभ और शुभ दोनों से रहित होगा, तब शुद्धात्मा का चिंतवन होगा। जिसे अभी तीव्र पापकषायों से भी निवृत्ति न हो, देव-गुरु का आदर, धर्मात्मा का बहुमान, साधर्मी का प्रेम आदि अत्यंत मंद कषाय की भूमिका में भी जो न आये, वह अकषाय चैतन्य का निर्विकल्प ध्यान कहाँ से करेगा ? प्रथम तो अशुभ और शुभ सर्व कषायों का रंग उड़ जाना चाहिये; जहाँ उनका रंग उड़ गया, वहाँ उनकी अत्यंत मंदता हो जाती है, और फिर चैतन्य का रंग बढ़ने पर उसकी अनुभूति प्रगट होती है। परिणाम को अत्यंत शांत किये बिना ऐसा अनुभव करना चाहे तो नहीं होता। अहा, अनुभवशील जीव की अंतरदशा कुछ और होती है !

जलगाँव शहर में

जिनबिम्ब वेदी-प्रतिष्ठा-महोत्सव

शिरपुर में पार्श्वनाथ प्रभु की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के भव्य महोत्सव के पश्चात् फाल्गुन शुक्ला ३ को पूज्य स्वामीजी जलगाँव पधारे और वेदी-प्रतिष्ठा का मंगल-उत्सव प्रारंभ हुआ। सेठश्री वृजलाल मगनलाल के सुहस्त से मंडप में जिनबिम्बों की स्थापना हुई। जिनेन्द्र भगवंतों का अपने आँगन में पदार्पण देखकर भक्तों का हृदय आनंद-उल्लास से प्रफुल्लित हो उठा। फाल्गुन शुक्ला ४ के प्रातःकाल छह इन्द्र-इन्द्राणियों की स्थापना हुई, पूज्य स्वामीजी ने मंगल आशीष दिया। प्रवचन के बाद इन्द्रों का जुलूस जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने के लिये धूमधाम से निकला; तथा साथ ही जलयात्रा भी निकली थी। दोपहर के प्रवचन बाद श्री पंच परमेष्ठी की सामूहिक पूजा हुई। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रवचन के बाद इन्द्रों द्वारा यागमंडल पूजा हुई। दोपहर को प्रवचन बाद इंद्रों तथा कुमारी देवियों द्वरा जिनमंदिर-वेदी-कलश-ध्वज शुद्धि की विधि हुई थी। आनंद-उल्लास से भरपूर वातावरण में पूज्य बेनश्री-बेन के सुहस्त से श्री स्वस्तिक विधान आदि मंगल क्रियायें हुई थीं। फाल्गुन शुक्ला ६ को सुबह ९ बजे श्री जिनेन्द्र भगवंतों को वेदी पर विराजमान करना था, उसके डेढ़ घंटे पूर्व पूज्य स्वामीजी जिनमंदिर में आ गये, तथा प्रभु-भजन की भावना जागृत हुई, इसलिये आदिनाथ भगवान, महावीर भगवान आदि की भावमय सामूहिक पूजा बेनश्री-बेन ने करवायी। मंदिर तो ऊपर-नीचे खचाखच भर गया था। पूजा के बाद भक्तों के अतीव उल्लास के बीच पूज्य स्वामीजी ने श्री आदिनाभ भगवान को वेदी पर प्रतिष्ठित किया। मूल नायक भगवान को विराजमान करने का लाभ सेठश्री नवनीतलाल चुनीलाल जवेरी ने लिया तथा उसकी खुशी में दस हजार एक रुपया जिनमंदिर को अर्पण किया। ऋषभदेव भगवान के आसपास महावीर भगवान तथा शांतिनाथ भगवान की स्थापना हुई, तदुपरांत जिनवाणी श्री समयसार की स्थापना हुई; मंदिर के शिखर पर कलश तथा धर्मध्वज की स्थापना हुई। इसप्रकार आनंदपूर्वक जलगाँव जिनमंदिर में भगवान जिनेन्द्रदेव की प्रतिष्ठा हुई। जलगाँव के मुमुक्षुओं को धन्यवाद!

यहाँ की चार बहिनें सोनगढ़-ब्रह्मचर्याश्रम में रहती हैं। भगवंतों की प्रतिष्ठा के समय

भक्तों के हृदय अत्यंत उत्साह से नाच उठे थे। मात्र तीन महीने में एक लाख रुपये का जिनमंदिर निर्मित हुआ और उसमें वेदी-प्रतिष्ठा भी आनंद से समाप्त हुई।

दोपहर शांतियज्ञ तथा प्रवचन के बाद जिनेन्द्र भगवान की भव्य रथयात्रा निकली थी। गंधकुटी पर विराजमान वीतराग प्रभु के दर्शन से जलगाँव नगर धन्य हो गया। रथयात्रा जिनमंदिर पर आई तथा मंगल-प्रतिष्ठा-उत्सव की पूर्णता के उल्लास में आनंदमय जय-जयकार से मंदिर गूँज उठा। अपने नगर के आँगन में जिनभगवंतों को देखकर मुमुक्षु भक्तों के हृदय तृप्त हुए। अब प्रभु की सेवा-पूजा करेंगे तथा प्रभु के मार्ग पर चलकर आत्महित की साधना करेंगे—ऐसी भावना से भक्तों ने अत्यंत भावपूर्ण भक्ति की थी।

पूज्य स्वामीजी जलगाँव नगर में छह दिन रहे; प्रतिदिन रात्रि को तत्त्वचर्चा होती थी। फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन दोपहर को जलगाँव से तीस मील दूर धरणगाँव में जहाँ एक विशाल जिनमंदिर है, और उसमें छोटी-बड़ी तीन सौ से अधिक प्राचीन जिन-प्रतिमाएँ विराजमान हैं। पार्श्वनाथ प्रभु की एक प्राचीन प्रतिमा दो हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन है, उसके हाथ की अंगुलियों में विशेष प्रकार की शैली दिखाई देती है। धरणगाँव का दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल बड़ा उत्साही है, पूज्य स्वामीजी के पधारने पर उत्साह से स्वागत हुआ; जिनमंदिर में जाकर जिनेन्द्र देव के समूह के दर्शन किये। तदुपरांत जिनमंदिर के चौक में विशाल सभा के बीच श्री समयसार कलश १२६ पर प्रवचन करके पूज्य स्वामीजी ने भेदज्ञान का स्वरूप समझाया। प्रवचन के बाद विशाल जिनमंदिर का और जिनप्रतिमाओं का फिर से अवलोकन करके पूज्य स्वामीजी ने भक्ति करवाई थी। इसप्रकार प्रसन्नतापूर्वक धरणगाँव का कार्यक्रम पूर्ण हुआ था तथा शाम को पुनः जलगाँव पधारे थे। रविवार (फाल्गुन शुक्ला ८) अंतिम दिन प्रवचन और अभिनंदन-पत्र-समर्पण के बाद जिनमंदिर में भक्ति हुई थी। जिनमंदिर होने के बाद यह प्रथम भक्ति होने से पूज्य बेनश्री-बेन ने अत्यन्त भावमय भक्ति करवायी थी।

फाल्गुन शुक्ला ९ के प्रातः जिनमंदिर में दर्शन-भक्ति करके मंगल जय-जयकार पूर्वक पूज्य स्वामीजी ने मलकापुर की ओर प्रस्थान किया।

विविध समाचार

भावनगर (सौराष्ट्र) में

श्री सीमंधर भगवान का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव एवं पूज्य श्री कानजीस्वामी की ८१ वीं जन्म-जयन्ती

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तारीख १-४-७० से १५-४-७० तक १५ दिन राजकोट में रहे, जहाँ उनके प्रवचनों से लोगों में अच्छी धर्मजागृति पैदा हुई। राजकोट के पश्चात् मोरबी, वांकानेर, लाठी, सावरकुंडल, कानातलाव तथा पुनः लाठी होते हुए पूज्य स्वामीजी तारीख १-५-७० के प्रातःकाल भावनगर पधारे, जहाँ उनका भव्य अभूतपूर्व स्वागत हुआ।

भावनगर में वैशाख कृष्णा १४ सोमवार तारीख ४-५-७० से वैशाख शुक्ला ३ शुक्रवार तारीख ८-५-७० तक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव अत्यंत हर्षोल्लास सहित धामधूम से मनाया जायेगा। इसी बीच वैशाख शुक्ला २ तारीख ७-५-७० को पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी की जन्म-जयन्ती भी बड़ी धामधूम से मनाने की तैयारियाँ चल रही हैं।

तत्पश्चात् पूज्य स्वामीजी वैशाख शुक्ला ४ तारीख ९-५-७० को अपना तीन महीने का मंगल-विहार समाप्त करके सोनगढ़ पधारेंगे, जहाँ उनका भव्य स्वागत होगा। सोनगढ़ में तारीख १०-५-७० से २९-५-७० तक विद्यार्थियों के लिये जैनदर्शन शिक्षण शिविर का आयोजन प्रतिवर्ष की भाँति किया गया है।

❀ ❀ ❀

सोनगढ़ में शिक्षण शिविर

वैशाख शुक्ला ५ तारीख १०-५-७० से तारीख २९-५-७० तक सोनगढ़ में प्रतिवर्ष की भाँति विद्यार्थियों के लिये जैनदर्शन शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया है। शिक्षण शिविर में जैन तत्त्वज्ञान की शिक्षा के साथ-साथ पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के महान आध्यात्मिक प्रवचनों का भी लाभ मिलता है। शिविर में सम्मिलित होने के इच्छुक विद्यार्थी बन्धु समय पर सोनगढ़ आ जावें। कृपया आने की सूचना पत्र द्वारा देवें। आते समय अपना

बिस्तर तथा आवश्यक सामग्री अवश्य साथ लावें। भोजन एवं ठहरने का प्रबंध संस्था की ओर से किया जाता है।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

❀ ❀ ❀

श्री दिगम्बर जिनमंदिर का शिलान्यास

अमरेली (सौराष्ट्र) में पूज्य श्री कानजीस्वामी की उपस्थिति में नूतन जिनमंदिर की शिलारोपण विधि दिनांक २३-४-७० को श्री नरभेराम हंसराज कामाणी के शुभहस्त से हो गई। इस अवसर पर अमरेली के दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल ने बड़ा उत्साह प्रदर्शित किया। श्री डॉ. प्रवीणभाई दोशी ने अपना एक मकान (जिसकी कीमत करीब पचास हजार रुपया है) तथा दस हजार रुपया नकद देने की घोषणा की। तदुपरांत कामाणी परिवार की ओर से इकतीस हजार तथा खारा परिवार की ओर से तीस हजार—इसप्रकार करीब एक लाख से अधिक का दान मंदिरजी को मिल चुका है। इस अवसर पर सौराष्ट्र के साधर्मी बड़ी संख्या में पधारे थे।

—ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

श्री पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव

—श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन उदासीन महिलाश्रम ईसरी बाजार में आयोजित पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव सानंद निर्विघ्न संपन्न हुआ। श्री पूज्य माता कृष्णाबाईजी द्वारा नवीन निर्मित भव्य जिनालय की प्रतिष्ठा हुई। प्रतिष्ठा में जितनी धनराशि की आय हुई वह सब धनराशि श्री पूज्य माता कृष्णाबाईजी ने महिलाश्रम ईसरी बाजार के स्थायी फंड में प्रदान करने की सार्वजनिक सभा में घोषणा की, सभी उपस्थित महानुभावों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

— श्री पूज्य माता कृष्णाबाईजी की ७१वीं जयन्ती श्री शेठ हजारीलालजी सभापति दिगम्बर जैन समाज ईसरी की अध्यक्षता में मनाई गई।

(इन्द्रकुमार जैन, मैनेजर श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन उदासीन महिलाश्रम, ईसरी)

बड़ामलहरा (छतरपुर-म.प्र.) में पंडित श्री डॉ. एस.पी. फौजदार ने अपने ही स्थान पर जिनालय के निर्माण के साथ १०५ क्षुल्लक चिदानंदजी की स्मृति में श्री चिदानंद विद्यानिकेतन पाठशाला की स्थापना की है। यहाँ धार्मिक शिक्षा का कोई साधन नहीं था,

जिसकी पूर्ति हो गई है। पंडितजी ने नि:शुल्क शिक्षा देने का निश्चय किया है। इस समय पाठशाला में करीब ४५ छात्र-छात्राएँ शिक्षा लेते हैं और पाठशाला का संबंध वीतराग विज्ञान विद्यापीठ (श्री टोडरमल स्मारक भवन) जयपुर से स्थापित कर रहे हैं।

❀ ❀ ❀

धरणगाँव (जलगाँव-महाराष्ट्र) परमोपकारी सत्पुरुष कानजीस्वामी का आगमन यहाँ तारीख १४-३-७० को हुआ। बड़े ही उत्साह पूर्वक स्वागत किया गया। जय-जयकार से सारा शहर गूँज उठा। स्वामीजी का आध्यात्मिक उपदेश सुनकर सब लोग बड़े ही प्रभावित हुए और ऐसा सुयोग प्राप्त होने के लिये अपने को धन्य माना। यहाँ दिगम्बर जैन मुमुक्षु स्वाध्याय मंडल की स्थापना हुई है। *—छगनलाल जैन, सेक्रेटरी,* दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल

❀ ❀ ❀

बुलन्दशहर (उ.प्र.) महावीर जयंती उत्सव जिलाधीश महोदय की अध्यक्षता में मनाया गया। कार्यक्रम में करीब साढ़े तीन हजार नर-नारी उपस्थित थे।

❀ ❀ ❀

नेमावर सिद्धक्षेत्र (खातेगाँव-म.प्र.) का वार्षिक मेला चैत्र शुक्ला तीज से पंचमी तक सानंद संपन्न हुआ। यह वही स्थान है जिसका उल्लेख निर्वाणकांड में हुआ है। यह सुरम्य क्षेत्र नर्मदा-रेवा नदी के तट पर स्थित है; यहाँ अनेक प्राचीन दिगम्बर जैन प्रतिमाएँ भूगर्म से निकली हैं। यहाँ से निकली हुई प्राचीन मूर्तियाँ श्री १००८ भगवान शांतिनाथ एवं मुनिसुव्रत की चौथे काल की हैं तथा श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा पर संवत् ८ राजा प्रियंकर द्वारा प्रतिष्ठित है और हरदा तथा खातेगाँव के जिनमंदिरों में विराजमान हैं।

पन्नालाल पाटनी, खातेगाँव

❀ ❀ ❀

आत्मधर्म के ग्राहकों को

आवश्यक सूचना

(१) आत्मधर्म का नया वर्ष आगामी वैशाख महीने से अंक नं. ३०२ के साथ प्रारम्भ होगा। चालू वर्ष (२०२५-२६) का चंदा अब नहीं लिया जाता।

(२) ग्राहकों से निवेदन है कि अपना आगामी वर्ष (संवत् २०२६-२७) का चंदा ३/ तीन रुपये मनीआर्डर द्वारा भिजवा देवें, ताकि अंक यथासमय आपको मिलता रहे।

(३) जिन नगरों में दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल हैं, उनसे निवेदन है कि अपने नगर के ग्राहकों का चंदा एकसाथ लिस्ट बनाकर मनीआर्डर अथवा ड्राफ्ट द्वारा भिजवा देवें।

(४) संस्था की ओर से वी.पी. नहीं की जाती। आपकी ओर से सूचना मिलने पर ही आत्मधर्म की वी. पी. की जायेगी।

(५) चंदा भेजते समय अपना ग्राहक नंबर एवं पूरा नाम और पता जिला-तहसील सहित स्पष्ट अक्षरों में अवश्य लिखें। पता स्पष्ट न होने से आत्मधर्म मिलने में विलंब होता है।

चंदा निम्न पते पर भेजें:—

मैनेजर

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) (गुजरात राज्य)

विश्वतत्त्वों का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान, एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	'' '' '' भाग-२	१.००
	'' '' '' भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	धर्म के संबंध में अनेक भूलें	बिना मूल्य
१७	अष्ट-प्रवचन	१.५०
१८	मोक्षमार्गप्रकाशक (ढूंढारी भाषा में) (सस्ती ग्रंथमाला दिल्ली)	२.२५
१९	अपूर्व अवसर-प्रवचन	१.५०
२०	पण्डित टोडरमलजी स्मारिका	१.००
२१	बालबोध पाठमाला, भाग-१	०.४०
२२	बालबोध पाठमाला, भाग-२	०.५०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग-३	०.५५
२४	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-१	०.५०
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-२	०.६५
२६	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-३	०.६५
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	३.२५
२७	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२८	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
२९	मंगल तीर्थयात्रा (गुजराती-सचित्र)	६.००

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक :

मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)